ISSN : 2321-3922
अप्रैल-जून -2026
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-13 अंक-45
Regd. No. PT/105/BGP-13/2027

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अप्रैल–जून 2026
प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

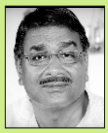

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :
श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–13 अंक 45

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
अप्रैल–जून 2026

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जुलाई 2026अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

क्रमांक		विषय	लेखक के नाम	पृष्ठांक
1,	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
2	समीक्षा	ठलुआ चिंतन : हास्य, रम्य और व्यंग्य से परिपूर्ण कहानियाँ	डॉ नीलोत्पल रमेश	6
3	कविता	पंच परमेश्वर बनाम परमेश्वर, सबसे बड़ा सूत्र	भोलानाथ कुशवाहा	7
4	समीक्षा	रोटी है पूनम जैसी	सत्यकेतु	8
5	समीक्षा	लोकजीवन पर आधारित : चयनित कहानियाँ	दीपक गिरकर	9
6	गजलें	राजेश जैन राही	राजेश जैन	11
7	समीक्षा	जहाँ नहीं उजियार वहाँ उजियारे की खोज	डॉ रणजीत पटेल	12
8	समीक्षा	जल– जंगल– जमीन की स्मृतियों में एक समकालीन काव्य – चेतना	चरुमित्र	13
9	गजलें	विज्ञानव्रत की	विज्ञान व्रत	15
10	समीक्षा	तुम्हारे प्रेम की पंखुरी	कुमार विजय गुप्त	16
11	आलेख	ऋषियों की तपोभूमि 'चंदेली' प्राचीन काशी	गौरी शंकर वैश्य	17
12	आलेख	एक पुस्तक : अनेक सन्देश जीवन की एक शिक्षिका	विभा कानन	18
13	चिंतन	कुरुक्षेत्र की भूमि पर गांधारी– कृष्ण संवाद की प्रासंगिकता	सुभाषचंद्र झा	19
14	कविता	मेरे आँगन के फूल	मिथिलेश आदित्य	21
15	घुमक्कड़ी	देश–ज्ञान	राहुल सांकृत्यायन	22
16	गजलें	केशव शरण	केशव शरण	24
17	वार्ता	श्यामसुंदर दुबे से आश्विनी कुमार दुबे की	अश्विनी कुमार दुबे	25
18	गजलें	नवीन माथुर पंचोली	नवीन माथुर पंचोली	28
19	संस्मरण	मेरी तीनों माताएँ नहीं रहीं	सतीश चंद्र मिश्रा	29
20	लघुकथा	माँ की सीख	सुरेश सौरभ	30
21	कहानी	एक माँ ने कहा था : सौ साल पहले	डॉ गिरिजा शंकर मोदी	31
22	लघुकथा	प्रतिच्छवि	अशोक गुजराती	35
23	कहानी	सुकून	डॉ रंजना जायसवाल	36
24	कहानी	कुंवारा बाप	श्यामल बिहारी महतो	39
25	कहानी	सहमा हुआ सन्नाटा	शुभदा मिश्रा	41
26	कविता	दिल का दर्द	अक्षय राज शर्मा	51
27	समीक्षा	इमिग्रेंटस कैनेडियन जीवन पर आधारित उपन्यास	दयानन्द जायसवाल	52

सृजन का अंधेरा

एक शिशु को जन्म लेने के बाद
मिलती है यह रोशनी की दुनिया
तब वह जीना शुरू करता है
सूरज के उजाले में
वही आधार है जीवन का
हमारी साँसों का मालिक वही
रात–दिन का निर्माता
पूरी सृष्टि को गढ़ने वाला
लेकिन सूरज की रोशन दुनिया से
अलग है कोख की अंधेरी कोठरी
माँ गढ़ती है अपने शिशु को
कला–कक्ष के अंधकार में
यह अंधेरा सृजन का अंधेरा है
जो बड़ा है रोशनी से
जिसे यह नहीं मिलता
उसे सूरज भी
जिंदगी का उजाला दे नहीं सकता।

–अंजना वर्मा

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

संवेदनाएँ व्यक्ति को अनुभूतियों का वरदान देती हैं और तब व्यक्ति अपनी भावनाओं को व्यक्त करना चाहता है। आपने सुना ही होगा कि आदिकवि वाल्मीकि ने जब क्रोंच के जोड़े में से नर पक्षी को शिकारी द्वारा मार दिए जाने पर मादा क्रोंची का विलाप सुना, तो उनकी करुणा जाग उठी और उन्होंने व्याध को श्राप देते हुए अनायास ही छंद कह दिया, जो संसार का प्रथम छंद कहा जाता है। महाकवि सुमित्रानंदन पंत ने लिखा है–

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
निकल कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।"

व्यक्ति जब भावनाओं के सागर में डूब जाता है, तब उस के हृदय से कविता अर्थात साहित्य जन्म लेता है। यह साहित्य ही समाज को परस्पर सौहार्द्र और अपनत्व से जोड़ता है और व्यक्ति स्वयं को समाज का अभिन्न अंग मानकर समाज के "हित" को ही अपना हित मानता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने बहुत बड़ी बात कही है जो साहित्य के व्यापक लक्ष्य को इंगित करती है–

"निज हेतु बरसता नहीं,व्योम से पानी।
हम हों समष्टि के लिए,व्यष्टि बलिदानी।"

साहित्य और मानवीयता का अटूट संबंध है, यह मानव संवेदनाओं, भावनाओं और जीवन के यथार्थ को कलात्मक रूप से अभिव्यक्त कर समाज को प्रेरित करता है। यह सहानुभूति, नैतिकता और सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण करता है, जिससे पाठक स्वयं को दूसरों से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं। यह मानवता को समझने और बेहतर समाज बनाने का सशक्त माध्यम है। साहित्य मानव की उस सहज प्रवृत्ति से उत्पन्न होता है जो उसे अपनी भावनाओं, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करने की प्रेरणा देती है। इसका उद्देश्य पाठक की आत्मा को उदात्त बनाना और उन्हें एक बेहतर इंसान बनने के लिए प्रेरित करना है। साहित्य मानवता की एक मौलिक आवश्यकता है जो मानवीय संवेदनाओं, बौद्धिक चेतना और सामाजिक व्यवस्था से अभिन्न रूप से जुड़ी है। अतः मानवता को साहित्य की आवश्यकता अनंतकाल तक बनी रहेगी, केवल इसके रूप और माध्यम समयानुसार परिवर्तित होते रहेंगे।

समाज अपनी सम्पूर्ण परम्पराओं, संस्थाओं एवं संगठनों को सहजे हुए भी सामाजिक जीवन की एक परिवर्तन और प्रगतिशील व्यवस्था है, जिसमें मनुष्य जन्म लेता है और अपनी आनेवाली पीढ़ियों के लिए इस व्यवस्था और आवश्यकताओं को सँजोकर रखता है; क्योंकि समाज में अनेक प्रकार की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का अस्तित्व होता है। साहित्य इन्हीं क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं को सहेजता है, इसलिए साहित्य समाज के बिना अधूरा है।

समाज और साहित्य एक दूसरे के इतने पूरक हैं कि आदिकाल से आज तक वे एक दूसरे पर आश्रित हैं और एक दूसरे के लिए प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं। पुराने दौर से ही मनुष्य साहित्य प्रेमी रहा है। समाज की प्रत्येक छोटी–बड़ी धड़कन, स्थिति–परिस्थिति, भावना एवं विचारधारा को साहित्य ने अपने में समाहित किया है। वास्तव में मानव जीवन के स्नेह पूर्ण रागात्मक विकास जो समाज में जन्म से लेकर फलते–फूलते हैं का नाम साहित्य है। इसलिए साहित्य और समाज के पारस्परिक संबंधों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्य वह है जो इस समिष्ट से साहित्यकार की चेतना के बाद उत्पन्न होता है और मानवीय संवेदनाओं, सांस्कृतिक मूल्यों एवं सामाजिक यथार्थ का एक व्यापक आईना है जो पाठक को संकुचित दायरे से निकालकर सार्वभौमिक मानवीय बोध से जोड़ता है। इस प्रकार साहित्य मानवीय चेतना को विकसित करने का सबसे सशक्त माध्यम है। यह हमें सिखाता है कि हम न केवल अपने लिए, बल्कि संपूर्ण मानवता के लिए सोचें। मानवीय संवेदना और सामाजिक यथार्थ का चित्रण साहित्य को कालातीत बनाता है और उसे व्यापक मानव समाज से जोड़ता है।

देश–काल से परे जो मूल्य और मर्यादाएँ मान्य हुईं और जिनकी निरन्तरता उल्लेखनीय है, उनमें मुख्य हैं–मनुष्य की मनुष्यता, न्याय की प्रतिष्ठा एवं विवेक का संतुलन और सम्यकत्व। न्याय एवं विवेक के हृदयस्थल में भी मनुष्य की मनुष्यता ही विराजमान होती है। इस प्रकार मनुष्यता ही मूल्यों का मुकुट है और न्याय तथा विवेक उस मुकुट के रत्न तथा मणि हैं। मूल्य विवेक में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की प्रतिष्ठा एवं निष्पत्ति है। सत्य के बिना न्याय निरुद्देश्य है और न्याय के बिना कोई मानवीय तथा मांगलिक आराधना नहीं हो सकती तथा जो सत्य एवं मांगलिक नहीं है उसमें सौंदर्य निवास नहीं करता, साहित्य में सौंदर्य ही पाठक को भावुकता, बौद्धिकता और कलात्मकता के अनूठे मेल से आनंदित कराता है। इसमें केवल आँखों या कानों को भाने वाली रचना करना ही नहीं आता, बल्कि भावनाओं को जगाने, जटिल विचारों को व्यक्त करने और मानवीय स्थिति का अन्वेषण करना भी संबंध रखता है। मनुष्य की मनुष्यता में ही उदात्त प्रेम और सार्वभौम करुणा की नदियाँ मूल्यों के तीर्थस्थल को पखारती हैं। विश्व का प्रत्येक महान साहित्यकार जब प्रेम और सौंदर्य की सृष्टि अपनी रचनाओं में करता है, तो सर्जन का विस्तार स्वाभाविक रूप से विन्दु से विराट तक फैल जाता है और उसके मन में विद्यमान प्रेम और सौंदर्य की भावनाएँ व्यक्तिनिष्ठ की सीमाओं को लांघ कर समष्टि में समाकर सर्व–संवेद्य हो जाती हैं।

साहित्य, शब्द और अर्थ मानवीय भावों की वह त्रिवेणी है जो कि सतत तरंगित, प्रवाहित होती रहती है। साहित्य विचारों की वह अभिव्यक्ति है जो समाज का यथार्थवादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण उजागर करती है। यह दृष्टिकोण त्रिकालिक स्वरूप लिए होता है, क्योंकि साहित्य न केवल अतीत के मुद्दों एवं विषयों की सार्थक अभिव्यक्ति है अपितु यह वर्तमान में हो रहे परिवर्तन को समाहित करते हुए समाज के गुण–दोषों को हमारे सम्मुख रखता है, ताकि व्यक्ति को समाज का वास्तविक प्रतिबिंब दृष्टिगोचर हो सके। साहित्य समाज के परिवर्तन के साथ अपने रूप, रंग, विषय–वस्तु, शैली–संरचना और तरीकों में बदलाव करता रहता है या विविध रूपों में समाज के समक्ष प्रकट होता है। अतः साहित्य सभी कलाओं की अपेक्षा समाज से अपना संबंध अधिक गहराई तक बनाये रखने में सफल होता है।

समीक्षा

ठलुआ चिंतनः हास्य, रम्य और व्यंग्य से परिपूर्ण कहानियाँ

डॉ. नीलोत्पल रमेश
बुध बाजार, गिद्दी ए,
जिला हजारीबाग (झारखंड)
मोबाइल – 09931117537

'ठलुआ चिंतन' राम नगीना मौर्य का नौवाँ कहानी–संग्रह है जो हाल ही में प्रकाशित होकर आया है। इसके पूर्व इनके आठ कहानी–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'आखिरी गेंद' (2017), 'आप कैमरे की निगाह में हैं' (2018), 'सॉफ्ट कॉर्नर' (2019), 'यात्रीगण कृपया ध्यान दें' (2020), 'मन बोहेमिया' (2021), 'आगे से फटा जूता' (2022), 'खूबसूरत मोड़' (2023) और 'राम नगीना मौर्य की 23 चयनित कहानियाँ' (2022)। इनकी कहानियाँ देश की प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में नियमित प्रकाशित होकर प्रशंसित होती रही हैं।

समकालीन कथा–साहित्य यथार्थ से भी आगे की बातों को पकड़कर आगे बढ़ रहा है। पहले के कथाकारों से आज के कथाकार तीव्रगामी सोच रखते हैं। इनकी कहानियों में वे सारी बातें पहले ही आ जाती हैं, जिसकी कल्पना हम वास्तव में नहीं कर पाते हैं। लेकिन समय और परिस्थितियां ऐसी आ जाती हैं कि वही हू–ब–हू घटित होते दिखाई देने लगता है। आज की कहानियाँ भविष्य–द्रष्टा की तरह अपने को पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रही हैं।

हिन्दी कथा–साहित्य में हाल के वर्षों में जिन कथाकारों ने अपनी पहचान बनायी है, उनमें से एक महत्त्वपूर्ण नाम रामनगीना मौर्य का है। इनकी कहानियाँ बनाव–सिंगार से इतर की कहानियाँ हैं। इनमें रोजमर्रा के जीवन की अनेक अनुभूतियाँ समाहित हैं। साथ ही इनकी कहानियों को पढ़ने के बाद लगता ही नहीं कि ये कहानियाँ हमारे इर्द–गिर्द नहीं घूम रही हैं। ये तो ऐसी लगती हैं, जैसे मेरे साथ ही यह सब घटित हो रहा हो। इनकी कहानियाँ एक नई भाषा, नये कहन और नये भावभूमि की कहानियाँ हैं, जिससे कहानी के एक नये दौर की शुरुआत हुई है, जो आगे चलकर और समृद्ध ही होगी, ऐसी आशा है।

राम नगीना मौर्य ने 'अपनी बात' में लिखा है –''जीवन में हास्य की महत्ता इसी बात से समझी जा सकती है कि दर्द कम करने, तनाव दूर भगाने, शीघ्र स्वस्थ होने के लिए चिकित्सा जगत भी हास्य उपचार को प्रभावी औषधि के रूप में मानता है और इसके लिए समय–समय पर हास्यप्रधान कॉमिक्स–किताबें पढ़ने, कॉमेडी फिल्में आदि देखने की पैरवी भी की जाती है। चिकित्सकों का तो यह भी मानना है कि दस मिनट की हँसी में दवा और व्यायाम–दोनों का ही फायदा मिल सकता है।... इस संग्रह की रचनाओं में पूर्व की भाँति कुछ व्यंग्य, हास्य और रम्य प्रसंग भी पढ़ने को मिलेंगे। वैसे इस संग्रह की ज्यादातर रचनाएँ मेरे पूर्व कहानी–संग्रहों में भी आ चुकी हैं। बस, इसमें कुछ–कुछ रम्य, हास्य और व्यंग्य का पुट देखते, यथावश्यक परिमार्जन करते, इन्हें एक जगह इकट्ठा करने का सूक्ष्म प्रयास किया गया है।''

नेल्सन मंडेला ने कहा था –''अगर आप किसी से ऐसी भाषा में बात करते हैं, जिसे वह समझता है, तो वह उसके दिमाग तक जाती है। यदि आप उससे उनकी ही भाषा में बात करते हैं, तो वह उसके हृदय तक जाती है।''

'ठलुआ चिंतन' में संगृहीत कहानियाँ उपर्युक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं जिसे पढ़कर पाठक भाव विभोर हो जाते हैं। ये कहानियाँ राम नगीना मौर्य की चयनित कहानियों से अलग हैं; क्योंकि इसमें हास्य भी है,रम्य भी है और व्यंग्य भी है, जो पाठकों को सोचने पर विवश करते हैं।

'हाई लेवल मीटिंग' कहानी के माध्यम से कथाकार ने एक ऐसी मीटिंग का जिक्र किया है, जो लोगों को हाई प्रोफाइल बनती है, जिसकी तैयारी और उसमें भाग लेने की ललक नए कार्मिकों के अंदर भरी रहती है। राम रिझावन को इस मीटिंग में भाग लेने के लिए उनके बॉस ने कहा था। इस मीटिंग के दिन बॉस को बाहर जाना था, वह भी छुट्टी के दिन यह मीटिंग थी। उन्हें अपने स्थान पर अपने अधीनस्थ कार्य करनेवाले ऐसे कर्मी की तलाश थी, जो अक्सर छुट्टी पर रहता था और वे थे – राम रिझावन। राम रिझावन पूरी मीटिंग स्वप्न में ही कर लेते हैं। हाई लेवल मीटिंग में होने वाली गतिविधियों को लेखक ने आँखों– देखा हाल की तरह प्रस्तुत किया है। ऐसी मीटिंग में लोग मीटिंग की बातें नहीं सुनते हैं, बल्कि वे थके–मांदे होने के कारण सो जाते हैं। ऐसी मीटिंगें औपचारिकता पूर्ण करने के लिए होती हैं। यही कारण है कि जिन्हें मीटिंग में भाग लेना चाहिए, वे किसी–न– किसी बहाने से ऐसी मीटिंग्स में भाग नहीं लेते हैं।

'ठलुआ चिंतन' कहानी के माध्यम से कथाकार ने नाई की दुकान में बैठे एक व्यक्ति के चिंतन को कहानी का मुख्य विषय बनाया है। वहाँ बैठे–बैठे कथानायक जो कुछ सोचता है, महसूस करता है, कथाकार ने इस कहानी में उसी का आँखों–देखा हाल प्रस्तुत कर दिया है। ये बातें बेकार में बैठे लोग ही कर सकते हैं। इनकी बातों का कोई एक विषय नहीं होता है, बल्कि दुनिया–जहान की बातें होती हैं। इसे ही कहानीकार ने 'ठलुआ चिंतन' कहा है। यानी बेकार में बैठे लोगों की बेवजह, परन्तु रोचक बातें।

'नयी रैक' में कथाकार ने एक रचनाकार की बेचैनी का जिक्र किया है। एक रचनाकार यानी नीलाम्बर प्रसाद को एक नयी रैक की जरूरत महसूस होती है; लेकिन पत्नी मना कर देती है। फिर भी धुन के पक्के नीलाम्बर प्रसाद एक नयी रैक बनवाकर घर में ले ही आते हैं, जिसकी वास्तविक कीमत पत्नी को नहीं बताते हैं। बताते हैं तो सिर्फ कारीगर की मजदूरी ही। पत्नी से झूठ बोलकर नीलाम्बर प्रसाद ने ठीक ही किया है, नहीं तो घर में बेवजह उन्हें मुश्किलों का सामना करना पड़ता। बाजार में कारीगरों की मनमानी और उनकी बॉरगेनिंग का जिक्र करने में भी कथाकार सफल हुआ है।

'दिमागी–कसरत' के बहाने कथाकार ने समीर के भूत और वर्तमान को एक साथ मिलाकर उसे दिमागी–कसरत करने पर मजबूर कर दिया है। समीर जिस मोहन कॉलोनी में बारह–तेरह वर्ष पहले रहता था, वहाँ की बहुत सारी बातें उसे याद आती हैं। पुराने लोग, पुरानी जगह जाने पर उससे जुड़ी सारी बातें चलचित्र की भाँति चलने लगती हैं। इसी बहाने मिलना–जुलना भी हो जाता है। समीर को दिमागी–कसरत करने पर ही उसकी जगह पर नौकरी पर आनेवाली महिला उसके सामनेवाली कोठी से निकलती है। दिमागी–कसरत के बहुत सारे फायदे हैं। जिसे कथाकार ने इस कहानी में बखूबी वर्णन किया है।

'उसकी तैयारियाँ' कहानी में कथाकार ने पति–पत्नी और बच्चों के द्वारा पार्टी में जाने की तैयारी को लेकर कहानी को रचा है। पार्टी में जाने को लेकर अमूमन प्रत्येक घर में हल्की नोंक–झोंक हो जाती हैं। एक कुशल गृहिणी की जिन्दगी घर–परिवार के लिए मजबूत आधार होती है, जिसमें आखिरकार वही घिरनी की तरह चारों तरफ नाचती फिरती है। कथाकार ने भागमभाग की जिन्दगी में एक गृहिणी अपनी जिम्मेवारियों को कैसे निभाती है, उसका बहुत ही मार्मिक ढंग से इस कहानी में वर्णन किया है।

'ग्लोब' कहानी के माध्यम से कथाकार ने पीढ़ी के अन्तराल को बेहद ही मार्मिक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। पिता–पुत्र के माध्यम से वैश्विक पटल पर हो रहे बदलाव को उजागर करने की कोशिश की है। ग्लोब के बहाने कथा–नायक अपने बचपन की स्थितियों से पुत्र को भी लाभान्वित करना चाहता है; लेकिन पुत्र ग्लोब के बदले मोबाइल, कम्प्यूटर आदि से ही वे सारी चीजें पिता को समझा देता है। एक जगह पिता कहता भी है कि..."कहाँ हमारी लौकी, बैगन, भिण्डी, तरोई, कुंदरू, टिण्डा, देशी घी वाली पीढ़ी और कहाँ ये पिज्जा, बर्गर, प्रोसेस्ड– फूड, नूडल्स और रिफाइण्ड तेलों से बने पदार्थ आदि खानेवाली पीढ़ी? भला क्या मुकाबला हमारा–इनका?" प्रस्तुत कथन पीढ़ी के अन्तराल को स्पष्ट कर देता है।

'छुट्टी का सदुपयोग' कहानी में नौकरी–पेशा लोगों की जिन्दगी में छुट्टियों की महत्ता को बहुत ही बारीकी से कथाकार ने पड़ताल की है। कथा–नायक और उसकी पत्नी के संवाद के द्वारा अनेक प्रसंगों का मार्मिक और रोचक ढंग से वर्णन, पाठकों को बाँधे रहने में सार्थक साबित होता है। इसमें कथाकार का जीवनानुभव साफ–साफ देखा जा सकता है।

'फैशन के इस नाजुक दौर में' कहानी के माध्यम से कथाकार ने यह बताने की कोशिश की है कि फैशन के इस दौर में किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। हम जिसे अपना समझने लगते हैं, वे ही समय आने पर धोखा दे देते हैं। आज का माहौल किंतु–परंतु के भँवर जाल में फँस गया है जिससे निकलना सबके वश की बात नहीं है। यह दौर ऐसा चल रहा है कि अपने भी आपको पहचानने से इनकार करने लगे हैं। फिर रही बात दूसरे की, तो उनका क्या कहना! फैशन के इस दौर में ना–बाबा, ना! किसी चीज की गारंटी नहीं दी जा सकती है।

'हस्बेमालूम' कहानी के माध्यम से कथाकार ने रेल यात्रा के दौरान होनेवाले अनुभवों को चित्रित किया है। यात्रा के दौरान बहुत तरह की सुविधाएँ–असुविधाएँ सामने आती हैं, जिसे यात्री को ही सामना करना पड़ता है।

राम नगीना मौर्य समकालीन कथा–साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। इनकी कहानियाँ रोजमर्रा के जीवन से बुनी हुई होती हैं। जिन विषयों पर हम बातचीत करते रहते हैं, उन विषयों पर कथाकार राम नगीना मौर्य कहानियाँ लिख देते हैं। इनकी कहानियों के विषय जीवन की भाग–दौड़ में घटित घटनाओं तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि निर्जीव वस्तुओं तक फैले हुए हैं। ये कहानियाँ कुछ कहती हैं। इनके विषय कुछ संदेश छोड़ने में सफल रहते हैं। जब कहानियाँ अंत तक पहुँचती हैं, तो पाठक को बहुत कुछ सोचने पर विवश कर देती हैं। यही कारण है कि समकालीन कथाकारों में राम नगीना मौर्य का नाम अग्रगण्य है। इनकी कहानियों के अभाव में समकालीन कथा–साहित्य पर कोई भी बात पूर्ण नहीं होगी।

———————————————————

कहानीकार : राम नगीना मौर्य, प्रकाशक : रश्मि प्रकाशन, लखनऊ – 226011

मूल्य :– 300/– रुपये, पृष्ठ : 188, वर्ष : 2024 ई.

———————————————————

कविताएँ

भोलानाथ कुशवाहा
बाँकेलाल टंडन की गली, वासलीगंज
मिर्जापुर–(उ.प्र.)
मो– 9335466414

पंच परमेश्वर बनाम परमेश्वर

धीरे–धीरे
आदमी काफी बदल गया
पंच परमेश्वर बनाकर
भेजा गया था उसे पंचायत में
परन्तु वहाँ
वह खुद परमेश्वर बन गया
सच्चाई और निष्ठा के बीच
निष्ठा को चुनकर
और पंचायत बन गयी
एक शिगूफा
अब हर कोई बनने के प्रयास में है
पंच परमेश्वर
और हर कोई
छोड़ रहा है शिगूफा
एक बात और उसमें से
समझ में आयी
इस लोकतंत्र में
पंच परमेश्वर की अहमियत
जब अस्थाई है
वह परमेश्वर की भूमिका भी
निभा सकता है
बारी आनी है
तब पंच परमेश्वर
बनने में क्या बुराई है।

सबसे बड़ा सूत्र

हर सवाल की चाबी
या सूत्र तय है
जैसे लघुतम और महत्तम का
उसी तरह जाति–धरम
फारवर्ड–बैकवर्ड और
अब यूजीसी
मनरेगा के लिए राम जी
और नरवणे
जिसका तय नहीं हल
खोजा जा रहा है
माथापच्ची जारी है
उठा–पटक–लड़ाई
की तैयारी है
जब भी हल नहीं मिला
लोक पर तंत्र का
मायाजाल चढ़ाया
प्रसाद दिया मुफ्त का
सत्ता पाया
सबसे बड़ा सूत्र
सब पर भारी
माया की छाया।

समीक्षा

रोटी है पूनम जैसी

सत्यकेतु
इलाहाबाद

'रोटी है पूनम जैसी' लेखन की विधा कोई भी हो, लिखने का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। कोई बात अगर मन में उठती है, इतनी बलवती होती है कि तुरंत कागज पर दर्ज करने को जी चाहता है, उस वक्त जरूर ठहर जाना चाहिए। विचार कर लेना चाहिए कि जो लिखने जा रहे, उसकी केंद्रीयता क्या है। उसकी पक्षधरता क्या है। किसके लिए लिख रहे, क्यों लिख रहे। लिखने का क्या असर हो सकता है। छवि कैसी बन सकती है। क्योंकि शब्द ऐसा बाण है जो लक्ष्य को बेध सके या न बेध सके, प्रयोग करनेवाले को गहरे असर में लेता है। संधान ठीक तो वाह वाह, लक्ष्य गलत तो हाय हाय... तय है।

वरिष्ठ ग़ज़लगो, गीतकार और 'संवदिया' के प्रधान संपादक मार्तण्ड का नवगीत संग्रह अभी–अभी आया है...'रोटी है पूनम जैसी'। शीर्षक से स्पष्ट है कि नवगीतकार की चिंता के केंद्र वे लोग हैं जिन्हें दो जून की रोटी मयस्सर नहीं है। रोटी उनके लिए पूनम के चाँद–जैसी होती है जो लंबी प्रतीक्षा के बाद हासिल होती है। लोकचेतना में चाँद की बड़ी स्वीकार्यता है। लोग चाँद को परिवार के आत्मीय बंधु की तरह बरतते हैं और चाँदनी को नेमत की तरह कबूल करते हैं। चाँद को आसक्ति से निहारते हैं। अकेले में उससे बातें करते हैं। सामूहिकता में उसके किस्सों का आदान–प्रदान करते हैं। रात के अंधेरे में उसकी मद्धम रोशनी में रास्तों और वस्तुओं की पहचान करते हैं। उसी तरह रोटी लोकचिंता की सबसे बड़ी वजह होती है। इसी रोटी के लिए लोग दिन–रात श्रम करते हैं। रोटी की निरंतरता और दोनों पहर उसकी उपलब्धता खुशी एवं संतुष्टि से भर देती है। नवगीतकार मार्तण्ड ने रोटी और पूनम के चाँद को एकाकार कर अपने उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया है। जैसे पूनम का चाँद महीने में एक बार ही आता है, उसी तरह कामगारों, श्रमिकों और दिहाड़ी मजदूरों के घर भरपेट रोटी की उपलब्धता गिने–चुने दिनों में ही रहती है; क्योंकि ज्यादा मेहनत करके भी उन्हें पैसे कम मिलते हैं। जब पैसे कम होंगे, तो जाहिर है रोटी में कटौती ही होगी...

''रोटी है पूनम जैसी
देख–देख ललचाएँ हम
काम खोजने पर मिलते
मेहनत ज्यादा पैसे कम।''(रोटी है पूनम जैसी', पृष्ठ 37)

गरीब और निम्न वर्ग की जिंदगी अभावों में ही बीतती गुजरती है। दुःख और पीड़ा की न हटनेवाली दीवार सारे उत्साह, सारी हिम्मत तोड़ देती है। अभाव चिड़चिड़ापन पैदा करता है और आपस में नोंकझोंक की स्थिति बनती है। ऐसे दुर्दिन जी रहे लोग धीरे–धीरे गुमसुम होते चले जाते हैं; क्योंकि निराशा के सघन होते जाले हटाना उनके वश में नहीं रह जाता है...

''गुमसुम–गुमसुम चुप्पी ओढ़े
बीत रहे हैं दिन
हर अभाव के नोक–झोंक में
चुभते हैं दुर्दिन।''(बीत रहे हैं दिन, पृष्ठ 25)

आँकड़ों में, अखबारों में, विज्ञापनों में विकास की झड़ी लगी है। रोज ही प्रगति के गीत गाए जा रहे हैं। बढ़ते संसाधनों के पहाड़े गिनाए जा रहे हैं, लेकिन हकीकत में अधिकांश आबादी सुख के इंतजार में थक रही है। विकास कुछ इस तरह हो रहा है, जैसे सड़क पर सुख बह रहा हो और ताले बंद देख घरों में प्रवेश नहीं कर रहा हो...

''क्रूर समय ने
सुख के घर में
लगा दिया है ताला।''(क्रूर समय का भाला, पृष्ठ 27)

इसी भाव को नवगीतकार ने दूसरे शब्दों में भी व्यक्त किया है...

''आशीषों की छाँव
घरों में
अब कहाँ रही
———
बची रहे छत
घर की
वह साँसें गँवा रही।''(आशीषों की छाँव, पृष्ठ 35)

आशिष बरसानेवाला मन खंडित हो गया है। कहीं आशिष उड़ेला जा रहा है, कहीं मुँह मोड़ा जा रहा है। सबको एक नजर से देखनेवाला गृहस्वामी अब नहीं रहा। घरों को माँ की तरह सँवारने, सहेजने वाला चरित्र अब विरल हो गया है। इसलिए दुःख और दुराव के हालात बनते जा रहे हैं। सामूहिकता, समभाव खत्म–सा हो रहा है। अपना पेट भरने की होड़ में मनुष्य कम, शिकारी बढ़ते जा रहे हैं। जब दूसरों के हिस्से का भी भक्षण किया जाएगा, तो भूखों की संख्या और व्याकुलता तो बढ़ती ही जाएगी...

''डाल–डाल चीलों का अड्डा
सब शिकार को हैं आकुल
उधर धरा बारूद बिछी है
इधर क्षुधा से जन व्याकुल।''(बापू मेरे, पृष्ठ 63)

मार्तण्ड जी हर तरह का विषय उठाते हैं। प्रकृति, प्रेम, गाँव, शहर, विकास, अभाव, राष्ट्रीयता, लोकतंत्र के हालात पर अपना नजरिया पेश करते हैं। इनमें वे विषय बहुत अपील करते हैं, जिनके जरिए गरीबों और जरूरतमंदों की बात करते हैं। होना भी यही चाहिए कि यदि चाँद को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है जो उन ताकतों का प्रतिरोध किया जाए, जो चाँदनी की राह रोकने की कोशिश में लगे हैं, जो समाज के सतरंगी स्वरूप को खंडित करने में लगे हैं। इन हालात के समर्थन में मार्तण्ड जी के ही कुछ दोहे कोट करना चाहूँगा...

''जंगल के जनतंत्र में, मुखिया हुआ बबूल
चुन–चुन कर अब भौंकते वट, पीपल को शूल
———
कैद यहाँ है रोशनी, अंधकार के हाथ
सारे उल्लू अब यहां, मौज मनाते साथ
———
लाश सड़क पर है पड़ी, दूर खड़े सब हाथ
राख हुई संवेदना, हुआ न कोई साथ।।''

'रोटी है पूनम जैसी' हाथ और साथ के छूटने की पीड़ा को अभिव्यक्त करती मार्तण्ड जी की यह पुस्तक श्वेतवर्णा प्रकाशन से आई है। महज 249 रुपये की इस किताब में 57 नवगीत और 27 दोहे शामिल हैं। नवगीत के चहेतों को यह पसंद आएगी। शुभाकांक्षाएँ...

समीक्षा

लोकजीवन पर आधारित : चयनित कहानियाँ

दीपक गिरकर
वैभवनगर, कनाडिया रोड, इंदौर
मो.–9425027036

'चयनित कहानियाँ' गोविंद सेन की समकालीन कहानियों का संग्रह है। 'चयनित कहानियाँ' गोविंद सेन का चौथा कहानी संग्रह है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। गोविन्द सेन जीवन के छोटे–छोटे प्रसंगों को लेकर कुशलता से कहानियाँ रचकर अपनी सर्जनात्मक शक्ति का परिचय देते हैं। गोविन्दजी अपने अनुभवों को बड़ी सहजता से कहानी में डाल लेते हैं। इनके पास कहानी कहने का एक सधा हुआ अंदाज है। कहानी में पात्रों का चरित्र–चित्रण इस प्रकार करते हैं जैसे कि वे उन पात्रों के साथ रहे हों। इन कहानियों में अनुभूतिजन्य यथार्थ है। इन कहानियों में निमाड़ और मालवा की माटी की आत्मीय सौंधी गंध महसूस होती है। गोविंद सेन की कहानियों में कल्पना की रेत कम और यथार्थ की सीमेंट अधिक दिखाई देती है। इन कहानियों के माध्यम से लेखक ने आज के ग्रामीण–जीवन और समाज के विविध पक्षों को संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। कथाकार ने ग्रामीण समाज में परित घटनाओं, अनुभवों और परिवर्तनों का गहन अवलोकन और मंथन किया है, जो इन कहानियों में यथार्थ और मानवीय संवेदना के संतुलित और मार्मिक रूप में व्यक्त होता है।

संग्रह की पहली 'मसाण' कहानी गाँव के लोकजीवन, मृत्यु–बोध और बाल मनोविज्ञान को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। कथाकार ने आरंभ से ही वातावरण निर्माण पर विशेष ध्यान दिया है।

रात का सन्नाटा, झाँझ–मिरदंग की ध्वनि और मृत्यु गीत ये सभी तत्त्व मिलकर एक रहस्यमय और भयावह वातावरण

रचते हैं जो पाठक को तुरंत कहानी के भावलोक में खींच लेता है। कहानी की सबसे बड़ी शक्ति इसका मनोवैज्ञानिक पक्ष है। मृत्यु केवल एक सामाजिक घटना नहीं, बल्कि नायक के मन में गहरे डर और असुरक्षा का कारण बनकर उभरती है। मुरदे को देखने का भय, भोजन में अरुचि और डरावने सपने ये सब उसके मानसिक आतंक को विश्वसनीय बनाते हैं। विशेष रूप से अरवी का सपने में दिखाई देना भय के स्थायी प्रभाव को रेखांकित करता है।

'स्पीड ब्रेकर' एक व्यंग्यात्मक और यथार्थपरक कहानी है जो रोजमर्रा के जीवन की छोटी–सी घटना के माध्यम से समय, सामाजिक तुलना और आत्मबोध–जैसे गहरे विषयों को उभारती है। लेखक ने साधारण अनुभव सुबह की सैर से लौटते समय किसी परिचित से टकरा जाना, को कहानी का आधार बनाकर उसे प्रभावशाली बना दिया है। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता इसका शीर्षक और प्रतीकात्मकता है। 'स्पीड ब्रेकर' केवल सड़क पर मिलनेवाला अवरोध नहीं है, बल्कि जीवन की गति को चाम देनेवाले वे लोग और परिस्थितियाँ हैं जो अनायास सामने आकर हमें अपनी स्थिति पर सोचने को मजबूर कर देते हैं। मान्या का अचानक मिल जाना नायक के लिए ऐसा ही एक मानसिक स्पीड ब्रेकर बन जाता है। चरित्र–चित्रण स्वाभाविक है। मान्या का आत्मसंतोष, अपनी सफलता का गर्व और बिना रुके बोलते जाना ये सब उसे जीवंत बना देते हैं। वहीं कथावाचक का भीतर ही भीतर कुंठित होना, तुलना करना और स्वयं को फँसा हुआ महसूस करना आधुनिक मध्यवर्गीय मनोदशा को उजागर करता है। विशेष रूप से यह विरोधाभास प्रभावशाली है कि पढ़ा–लिखा होने के बावजूद नायक संघर्षरत है, जबकि कम पढ़ा–लिखा मान्या जीवन का आनंद ले रहा है।

'स्पीड ब्रेकर' एक सशक्त कहानी है, जो हल्के व्यंग्य और गहरे यथार्थ के माध्यम से समकालीन जीवन की विडंबनाओं को प्रभावी ढंग से उजागर करती 'गुमशुदा चाँद की वापसी' कहानी सामाजिक यथार्थ और संवेदनशील मानवीय दृष्टि का सशक्त उदाहरण है। लेखक ने एक साधारण दृश्य कक्षा के बाहर रखी बच्चों की चप्पलों को कथा का केंद्र बनाकर गरीबी, व्यवस्था की जटिलता और शिक्षक के भीतर जाग्रत करुणा को प्रभावी रूप में उकेरा है। कहानी की सबसे बड़ी ताकत इसका दृश्यात्मक विवरण है। चप्पलों की कतार, जूतों की कमी और घिसी–पिटी चप्पलों का वर्णन पाठक के सामने आदिवासी अंचल के सरकारी स्कूल की वास्तविक तस्वीर खड़ी कर देता है।

पंवार सर का उन चप्पलों को ध्यान से देखना और उनसे बच्चों की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाना, एक संवेदनशील शिक्षक–मन को प्रकट करता है। कथा में व्यवस्था पर सूक्ष्म व्यंग्य भी है। आय प्रमाण–पत्र के लिए सरपंच से लेकर एस.डी.एम. तक की अनिवार्यता पर सवाल उठाकर लेखक सरकारी तंत्र की जटिलताओं और उनकी मार झेलते गरीब बालकों की पीड़ा को उजागर करता है। यह आलोचना मुखर न होकर सहज और विचारोत्तेजक है, जो कहानी को वैचारिक गहराई देती है। मनोज का उल्लेख कहानी को भावनात्मक केंद्र प्रदान करता है। सबसे खराब हालत वाली चप्पलों में उसके परिवार की तंगहाली का संकेत मिलता है, पर साथ ही उमका पड़ने में अच्छा होना आशा और संभावना का प्रतीक बन जाता है। यही बिंदु कहानी के शीर्षक से भी जुड़ने की संभावना बनाता है, गरीबी में दवा हुआ 'चाँद' जो एक दिन वापस चमक सकता है।

'बरकत' एक मार्मिक और यथार्थपरक कहानी है, जो शोषण, भरोसे के टूटने और सामाजिक पाखंड को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उजागर करती है। लेखक ने पारिवारिक संबंधों की आड़ में होनेवाले आर्थिक और मानसिक शोषण को बहुत सहज लेकिन गहरे असर के साथ प्रस्तुत किया है। कहानी की शुरुआत ही नाटकीय है, दराज से रुपये गायब होने का आरोप। यह आरोप केवल एक सिक्के का नहीं, बल्कि जगदीश के आत्मसम्मान पर वज्रपात है। खाना खाते समय उसका हाथ थाली और होंठों के बीच 'फ्रीज' हो जाना उसके भीतर की बेबसी और अपमान को सशक्त प्रतीकात्मकता देता है। बिना अपराध के दंड भोगना, कहानी के केंद्रीय भाव को स्थापित करता है। जीजाजी का चरित्र कहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि है। वे बाहर से मददगार,

रसूखदार और आश्वासन देनेवाले दिखते हैं; लेकिन भीतर से अवसरवादी और स्वार्थी हैं। 'चुटकी में नौकरी' लगवा देने जैसे संवाद ग्रामीण समाज में फैले झूठे सपनों और दलाली संस्कृति पर तीखा व्यंग्य हैं। बरकती रुपया यहाँ केवल आस्था का प्रतीक नहीं, बल्कि लालच और नियंत्रण का औजार बन जाता है। जगदीश का चरित्र अत्यंत संवेदनशीलता से गढ़ा गया है। उसकी शिक्षा, सपने, संघर्ष और अंततः पलायन, सब कुछ पाठक को भीतर तक छूता है। शहर में उसके रहने की स्थितियाँ, गुमटी में सोना, सैलून और घर का पूरा काम करना, ये दृश्य शोषण को बिना उपदेशात्मकता के उजागर करते हैं। पिता का आना और बेटे की दुर्दशा देख चुपचाप चिंतित हो जाना, कथा को भावनात्मक गहराई

देता है। कहानी का अंत अत्यंत सशक्त और प्रतीकात्मक है। जगदीश का गुमटी से गायब हो जाना और दराज में 'बरकती रुपया' का वैसा ही मौजूद रहना यह स्पष्ट कर देता है कि जीजाजी को व्यक्ति नहीं, बल्कि लाभ चाहिए था।जगदीश को वे
भी उसी सिक्के की तरह रखना चाहते थे जो चुपचाप पड़ा रहे और काम आता रहे। 'बरकत' एक सशक्त सामाजिक कहानी है, जो रिश्तों के भीतर छिपे स्वार्थ, बेरोजगारी की त्रासदी और गरीब युवाओं के शोषण को ईमानदारी से प्रस्तुत करती है। यह कहानी पाठक को सोचने पर मजबूर करती है कि सबसे खतरनाक शोषण वही होता है, जो अपनेपन की आड़ में किया जाए।

'लाँबू फोतरू' कहानी में कथाकार ने कम पढ़े–लिखे, हेकड़बाज ग्रामीण व्यक्ति की मानसिकता का अत्यंत सजीव, स्वाभाविक और यथार्थपरक चित्रण किया है। यह चरित्र न तो असामान्य है और न ही कल्पनाजन्य, बल्कि ग्रामीण समाज में सहज रूप से दिखाई देनेवाली उस प्रवृत्ति का प्रतिनिधि है, जो सीमित ज्ञान के बावजूद अपने को सर्वज्ञ समझती है। लाँबू फोत की मानसिकता का मूल आधार उसका अधूरा ज्ञान और अतिरंजित आत्मविश्वास है। पढ़ाई–लिखाई की कमी उसे हीनभाव से नहीं भरती, बल्कि उसके भीतर एक प्रकार का दंभ पैदा करती है। वह अपने अनुभवों और सुनी–सुनाई बातों को ही अंतिम सत्य मानता है तथा किसी भी प्रकार के तर्क, प्रश्न या असहमति को अपनी प्रतिष्ठा पर आघात समझता है। यही कारण है कि उसका व्यवहार अक्सर आक्रामक, हठी और उद्दंड दिखाई देता है।

'तोतिया स्कूटर' एक संवेदनशील और यथार्थपरक कहानी है, जो मध्यवर्गीय ग्रामीण परिवार, बड़े बेटे पर लादी गई अपेक्षाओं और व्यक्ति की दबी हुई आकांक्षाओं को अत्यंत प्रभावी प्रतीकात्मकता के साथ प्रस्तुत करती है। कहानी का आरंभ ही भावनात्मक वातावरण रच देता है खाली कमरे को 'पिंजरे' की उपमा और स्कूटर को तोते से जोड़ना, नायक की मानसिक स्थिति को गहराई से अभिव्यक्त करता है। तोतिया स्कूटर केवल एक वाहन नहीं, बल्कि शिव की स्वतंत्रता, सुविधा और आत्मसम्मान का प्रतीक है। उसके बने जाने से कमरे में पसरी उदासी दरअसल शिव के जीवन में फैले शून्य और ग्लानि को दर्शाती है।यह बिंब, जैसे किसी आत्मीय तोते की गर्दन मरोड़ दी गई हो, शिव के भीतर के अपराधबोध और क्रोध को एक साथ उभारता है।कहानी में बाबूजी का चरित्र पारंपरिक, नियंत्रणप्रिय और अपेक्षाओं से भरा हुआ है। वे बेटे को कमाने की मशीन की तरह देखते हैं– पहले नौकरी का दबाव, फिर पूरे वेतन पर अधिकार। घर खर्च देने के बावजूद असंतोष, पत्नी के इलाज को 'फिजूल खर्ची' मानना और बरात के मेटाडोर का किराया तक ससुर से माँगना, ये प्रसंग पितृसत्तात्मक सोच और संकीर्ण मानसिकता को उजागर करते हैं।शिव का संघर्ष केवल आर्थिक नहीं, बल्कि भावनात्मक भी है। बड़े बेटे से श्रवण कुमार बनने की अपेक्षा, पत्नी की बीमारी, रोज 25 किलोमीटर साइकिल चलाना और अंततः स्कूटर खरीदना, ये सब उसके भीतर पनपती छोटी–छोटी खुशियों और उनसे जुड़े अपराधबोध को दिखाते हैं। स्कूटर का छोटा भाई शंभू द्वारा उपयोग और खराब किया जाना, पारिवारिक असमानता और उपेक्षा को और गहरा करता है।

'धूप में पिता' एक अत्यंत संवेदनशील, मनोवैज्ञानिक और यथार्थवादी कहानी है। यह कहानी पिता–पुत्र के जटिल संबंधों, पीढ़ीगत टकराव, अपराधबोध और आत्मग्लानि को अत्यंत सूक्ष्मता से प्रस्तुत करती है। लेखक ने साधारण घटना के माध्यम से गहरी भावनात्मक सच्चाई को उजागर किया है। कहानी का कथ्य आधुनिक जीवन में पारिवारिक संबंधों के विघटन और उससे उपजे मानसिक द्वंद्व पर आधारित है। पुत्र शहर/कसबे में रहने का निर्णय ले चुका है, जबकि पिता आज भी ग्रामीण जीवन, परंपरा और सामूहिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। पिता का तपती धूप में पैदल आना केवल शारीरिक कष्ट नहीं, बल्कि उनके त्याग, मजबूरी और मौन प्रेम का प्रतीक है। दूसरी ओर पुत्र का भीतर–ही–भीतर खीजना और अंत में आत्मदाह–जैसा अनुभव करना उसकी संवेदनहीनता पर आत्मस्वीकृति है। पिता का चरित्र अत्यंत प्रभावशाली है। वे कम बोलते हैं, कोई शिकायत नहीं करते; लेकिन उनका पसीना, थकान और चुपचाप लौट जाना बहुत कुछ कह जाता है। पुत्र का चरित्र आत्मकेंद्रित, उलझा हुआ और अंतर्द्वन्द्व से ग्रस्त है। वह बाहर से कठोर दिखता है, पर अंत में उसका नंगे पाँव तपती रेत पर खड़ा होना उसके अपराधबोध का सशक्त प्रतीक बन जाता है। रजनी और अंकित गौण पात्र होते हुए भी कहानी को यथार्थ के धरातल से जोड़ते हैं।

धूप यहाँ केवल मौसम नहीं है, बल्कि पिता का जीवन, उनका संघर्ष और पुत्र के लिए उनका मौन प्रेम है। अंत में तपती रेत पर जलते तलवे पुत्र की आत्मग्लानि और नैतिक दंड का प्रतीक हैं। पिता 'धूप कमरे में छोड़ जाते हैं' यह पंक्ति कहानी की आत्मा है। 'धूप में पिता' एक सशक्त, मार्मिक और विचारोत्तेजक कहानी है, जो कम शब्दों में गहरी चोट करती है।

'गलया का सपना' एक मार्मिक यथार्थवादी कहानी है, जो ग्रामीण समाज में व्याप्त शोषण, गरीबी और वर्गभेद को संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करती है। गलया पावणा जैसे हरसूद मजदूर का चरित्र किसान–मजदूर संबंधों की अमानवीय सच्चाई को उजागर करता है। अमर्या बाबा द्वारा किया गया आर्थिक और मानसिक शोषण उस व्यवस्था का प्रतीक है, जिसमें गरीब की मेहनत का पूरा लाभ उसे कभी नहीं मिल पाता। गलया का चरित्र अत्यंत करुण है। बचपन से कुपोषित, अशिक्षित और विश्वास करनेवाला गलया शोषण को अपनी नियति मान लेता है। अमर्या बाबा का चरित्र स्वार्थी और क्रूर जमींदार वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि उनका बेटा रमेश संवेदनशील, न्यायप्रिय और मानवीय मूल्यों से युक्त है। रमेश का गलया के प्रति स्नेह कहानी को मानवीय ऊँचाई प्रदान करता है। कहानी ग्रामीण समाज की उस सच्चाई को सामने लाती है, जहाँ मजदूर को मेहनत के अनुरूप मजदूरी नहीं मिलती और उसे ठगा जाता है। गलया का रेडियो का सपना उसकी छोटी–सी खुशी और बेहतर जीवन की आकांक्षा का प्रतीक है। अंत में गलया की मृत्यु पाठक को भीतर तक झकझोर देती है और यह संदेश देती है कि समाज की संवेदनहीनता कई सपनों को जन्म लेने से पहले ही मार देती है। 'गलया का सपना' शीर्षक पूर्णतः सार्थक है। रेडियो का सपना गलया के जीवन की अधूरी इच्छाओं और उसकी असफल नियति का प्रतीक बन जाता है।

'स्याही' एक प्रभावशाली कहानी है जो व्यवस्था, साहित्य और प्रतिभा के शोषण को अत्यंत सूक्ष्म; किंतु तीखे व्यंग्य के साथ प्रस्तुत करती है। कहानी कम शब्दों में एक बड़े सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करती है। कहानी का केंद्र एक ग्रामीण प्राइमरी शिक्षक है, जो कवि भी है; परंतु सत्ता और समाज की दृष्टि में उसकी पहचान केवल गाँवड़े का मास्टर भर है। उसकी रचनात्मक क्षमता का उपयोग प्रशासनिक तंत्र अपने स्वार्थ के लिए करता है; किंतु उसे मान–सम्मान और सहभागिता से वंचित रखा जाता है। यही शोषण कथा का मूल कथ्य है। कवि–शिक्षक का चरित्र संवेदनशील, आत्मसम्मानी और मौन पीड़ा को सहने वाला है। एस.डी.एम., नगरपालिका अध्यक्ष और पत्रकार–तीनों पात्र सत्ता के प्रतिनिधि हैं, जो प्रतिभा को साधन समझते हैं, सहयोगी नहीं। पप्पू पत्रकार का चरित्र विशेष रूप से अवसरवादिता और दलाली प्रवृत्ति का प्रतीक बनकर उभरता है।

'दसवीं के भोंगा बाबा' एक अत्यंत सरल, भावपूर्ण और मानवीय संवेदनाओं से भरी लघुकथा है। यह कहानी किसी असाधारण व्यक्ति की

नहीं, बल्कि एक साधारण ग्रामीण चरित्र की असाधारण मानवीयता को रेखांकित करती है। भोंगा बाबा का न रहना और फिर भी स्मृतियों में जीवित रहना कथा का मूल भाव है। भोंगा बाबा का चरित्र अत्यंत आत्मीय और करुण है। वे खेतों की रखवाली करते हैं, कुत्तों के लिए रोटियाँ इकट्ठी करते हैं और बच्चों के प्रिय हैं। यह सब उनके भीतर छिपे निश्छल हृदय को प्रकट करता है। बच्चों के लिए उनका कल्पवृक्ष होना उनके वात्सल्य और उदारता का सुंदर प्रतीक है। वे अपने से अधिक दूसरों की चिंता करते हैं, यही उन्हें विशिष्ट बनाता है। कहानी मानवीय करुणा, निःस्वार्थ सेवा और सह–अस्तित्व का संदेश देती है। यह बताती है कि समाज में ऐसे लोग भी होते हैं जो बिना किसी अपेक्षा के दूसरों के लिए जीते हैं और मृत्यु के बाद भी स्मृतियों में अमर हो जाते हैं। 'इडी' कहानी प्रेम, सत्ता–संतुलन और सामाजिक दोहरेपन को उजागर करनेवाली सशक्त कथा है। इसमें एक स्कूल अध्यापक का आदिवासी लड़की से प्रेम संबंध है, किंतु वह उससे विवाह करने को तैयार नहीं होता। यह संबंध प्रेम से अधिक उपभोग और असमान शक्ति–संबंध का संकेत देता है। जब आदिवासी लड़की अपने अधिकार और सम्मान के लिए तीव्र तेवरों के साथ स्कूल में अध्यापक को खोजने आती है, तो अध्यापक का भाग जाना उसके नैतिक खोखलेपन को उजागर करता है। कहानी में यह विडंबना और तीखी हो जाती है कि वहीं अध्यापक आगे चलकर उसी स्कूल की एक अध्यापिका से एकतरफा प्रेम करने लगता है और उससे विवाह करना चाहता है; किंतु वहाँ वह स्वयं अस्वीकृत हो जाता है। इस तरह कहानी कर्म और फल के सिद्धांत को सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत करती है।

'टापू' एक प्रभावशाली मनोवैज्ञानिक कहानी है, जिसमें बाहरी घटनाओं से अधिक पात्र के अंतर्मन की हलचल को केंद्र में रखा गया है। कहानी का 'टापू' केवल भौगोलिक संरचना नहीं, बल्कि मनुष्य की मानसिक अवस्था का प्रतीक बनकर उभरता है। 'दाढ़ी' और 'चाबी' कहानी में व्यंग्य एक सशक्त औजार के रूप में उपस्थित है। यह व्यंग्य न तो खुलकर हँसाता है और न ही सीधे आरोप लगाता है, बल्कि संकेतों, प्रतीकों और स्थितियों के माध्यम से व्यवस्था और मानसिकता पर चोट करता है।

पाठक गोविन्द जी की कहानियों को पढ़ना प्रारम्भ करता है, तो एक बैठक में उन्हें पढ़कर ही साँस लेता है। कथाकार की कहानियों स्पष्ट रूप से निर्बल, उपेक्षित और हाशिए पर बड़े लोगों के पक्ष में बड़ी दिखाई देती हैं। यह पक्षधरता किसी नारे या उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि जीवन स्थितियों, पात्रों और घटनाओं के स्वाभाविक प्रवाह में उभरती है। कथाकार अपने कथानक के केंद्र में उन पात्रों को रखते हैं जिन्हें समाज अक्सर अनदेखा कर देता है ग्रामीण शिक्षक, आदिवासी स्त्री, साधारण श्रमिक, हाशिए के लोग। उनकी पीड़ा, संघर्ष और अपमान को लेखक संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

कहानियों में पात्रों के संवाद गाँवों की लोकभाषा में लिखे गए हैं, जिससे रचनाएँ अत्यंत विश्वसनीय, जीवंत और जमीन से जुड़ी प्रतीत होती हैं। लोकभाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं रहती, बल्कि वह परिवेश, संस्कृति और पात्रों की मानसिकता को भी उजागर करती है। इन कहानियों में ग्रामीण जीवन की समस्याओं तथा सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश की यथार्थवादी और मार्मिक झलक प्रस्तुत की गई है। गोविन्द जी कहानियों में सिर्फ पात्र ही नहीं समूचा परिवेश पाठक से मुखरित होता है। ग्रामीण समाज के हर वर्ग के व्यक्ति को बहुत ही निकट से परिचित होकर कथाकार उनका वर्णन रोचकता से करते हैं, इसी वजह से कहानियाँ पाठक को बहुत अधिक प्रभावित करती है। आशा है साहित्य जगत में गोविंद सेन के समकालीन कहानियों के संग्रह 'चयनित कहानियाँ' का स्वागत होगा।

ग़ज़लें

राजेश जैन 'राही'
कमला सुपर मार्केट, तेलघानी नाका,
स्टेशन रोड, रायपुर (छ.ग.),
मो.–9425286241

1

रुख़ हवाओं का समझना चाहिए,
वक़्त बदले तो बदलना चाहिए
दूर तक फ़िसलन भरी है राह में
आपको अब तो सँभलना चाहिए
मोड़ पर कोई मिलेगा आपको
रोज़ थोड़ा–सा टहलना चाहिए
हो रही जयकार काफ़ी देर से
आपको अब तो पिघलना चाहिए
बादलों का साथ नदिया को नहीं
बाढ़ का पानी उतरना चाहिए
आपका लहज़ा मुलायम हो मगर
कोई दे धोखा उबलना चाहिए
उड़ गए वो आज दिल्ली के लिए
हल कोई जल्दी निकलना चाहिए
बाँटकर सबको मिलेंगी कुर्सियाँ
तर्क सत्ता का समझना चाहिए।

2

लेखनी उनकी ज़रा लाचार है
बीच में इक धर्म की दीवार है
जुल्म रज़िया पर हुआ कुछ बोलिये
आपका खोया कहाँ मेयार है
अब दया, करुणा, अहिंसा ताक पर
ख़ंजरों की नोक पर संसार है
कौन जाँचेगा भला इतिहास को
वोट ही हर जाँच का आधार है
सिसकियाँ भी हो गयी ख़ामोश अब
ख़ौफ़ का इतना बढ़ा व्यापार है
आग बाज़ू में लगी है आपके
बीच में बस इक कँटीला तार

3

मुझे अपनी कहानी में प्रमुख किरदार दे देना
नहीं है घर कोई मेरा मुझे घर–बार दे देना
बुलाने की ज़रूरत क्या, कभी आओ अचानक तुम
मेरे त्यौहार सूने हैं, मुझे त्यौहार दे देना
अँधेरा हो गया काफ़ी किसे आवाज दूँ बोलो
चमकते चाँद से अपने मुझे रुख़सार दे देना
ग़ज़ल में गीत में तुम हो, तुम्हीं तुम हो हवाओं में
ग़ज़ल मेरी अधूरी है, नये अशआर दे देना
अभी यौवन अधूरा है, अभी शृंगार आधा है
मेरा तुम प्यार ले लेना, मुझे तुम प्यार दे देना

समीक्षा

जहाँ नहीं उजियार वहाँ उजियारे की खोज

डॉ. रणजीत पटेल
मुजफ्फरपुर (बिहार)
मो.–6207485329

नवगीतकार योगेन्द्र प्रताप मौर्य अब किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। बाल कविता संग्रहों से इतर उनके तीन नवगीत संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनका पहला नवगीत संग्रह 'चुप्पियों को तोड़ते हैं' सन् 2019 में पूर्णिमा वर्मन द्वारा आयोजित नवगीत महोत्सव, लखनऊ में लोकार्पित हुआ था। उस अवसर पर मैं स्वयं उपस्थित था। पहला संग्रह ही पाठकीय दृष्टि से प्रभावशाली और विचारोत्तेजक सिद्ध हुआ। सृजन के प्रति पूर्णतः समर्पित साधक ही जीवन के अनकहे सत्यों का साक्षी बन पाता है। साधना की पूर्णता के लिए पूर्ण समर्पण आवश्यक है और इस कसौटी पर योगेन्द्र प्रताप मौर्य खरे उतरते हैं। गीत की पारंपरिक संरचना से अलग हो जाना मात्र किसी रचना को 'नवगीत' नहीं बना देता। नवगीतकार योगेन्द्र अनावश्यक प्रयोगधर्मिता में उलझने के बजाय ससमय–यथार्थ की स्वाभाविक चिंताओं को अभिव्यक्त करते हैं–

''घर बनाया आदमी पर
रह न पाता है घरों में
घुस रहीं परछाइयाँ भी
दौड़कर अब बंकरों में
क्या हुआ
क्यों आज धरती
का बुरा फिर हाल है।

सायरन ने छीन ली है
नींद आधी रात की फिर
हम कहें किसको कि किसने
युद्ध की शुरुआत की, फिर
क्या हुआ
क्यों आज धरती
फिर हुई कंकाल है।''

इन पंक्तियों में युद्ध, विस्थापन और असुरक्षा का सामूहिक भय मुखर हुआ है। योगेन्द्र किसी एक देश, जाति या धर्म के नहीं, बल्कि समूची मानवता के पक्षधर कवि हैं। चिड़ियाँ दिन–भर अलग–अलग दिशाओं में उड़ती हैं, पर संध्या होते ही अपने घोंसलों में लोट आती हैं; किंतु मनुष्य आज अपने ही घर और देश में सुरक्षित नहीं है। आधी रात में बजता सायरन मनुष्य को बंकरों और जंगलों की ओर भागने को विवश कर देता है।

आधुनिक युग में विखंडन की प्रौद्योगिकी पूँजी का एक बड़ा पाखंड बन चुकी है। इसने हमारी परंपरागत सामाजिकता को गहरे स्तर पर क्षतिग्रस्त किया है। ऐसे परिवेश में गीतकार का मौन रहना असंभव है–

''धीरे–धीरे क्षीण हो रहे
लहराते ध्वज
किंतु कहाँ होता है
हमको कुछ भी अचरज
आज सियासत ने
गर्दन फिर काटा है
दूर–दूर तक
दहशत है–सन्नाटा है
जान–बूझकर
नहीं गवाही देता सूरज
सी.सी.टी.वी. की
कैसी निगरानी है
वक्त लिख रहा फिर से
एक कहानी है।''

अथवा–

''जाने कितने घर में
मौन–उदासी छायी है
जलती हुई पराली से
दिल्ली घबरायी है
कितनी ही साँसों पर
संकट आया है
धीरे–धीरे अंधकार की
हुई बहाली है
सूरज भी निस्तेज
कहीं गुम इसकी लाली है।''

'जहाँ नहीं उजियार' संग्रह में स्थानिक और महादेशीय अनुभवों के मेल से निर्मित एक ऐसा काव्य–स्पेश उपस्थित है, जिससे हर संवेदनशील पाठक का नाता बनता है। दहशत और सन्नाटे के बीच जलती पराली, मौन–उदासी और निस्तेज सूरज–ये सभी समकालीन यथार्थ के प्रतीक बनकर उभरते हैं।

नवगीतकार का प्रमुख दायित्व समाज को सजग करना है–चाहे वह वेदव्यास हों या योगेन्द्र मौर्य। अंतर केवल कथन–शैली का है। वंचितों और हाशिए के समाज के प्रति योगेन्द्र मौर्य की संवेदना सक्रिय और प्रतिबद्ध है–

''कुछ दिन बादल
कुछ दिन जीना
खुला हुआ आकाश
बची रहे कुछ आस
दुख में, गहन निराशा में भी,
गर्म हवाओं से लड़ना ही
है अपनी पहचान
थोड़ी–सी नफरत दुनिया में
है थोड़ा–सा प्यार
कोशिश हो हम जिएँ हमेशा
जितने हैं त्योहार
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई
सबका हिंदुस्तान।''

आज जब नेपथ्य में हँसी और मंच पर रुदन का दृश्य आम हो गया है, तब यह संग्रह सामाजिकता के क्षरण पर गहरी चिंता व्यक्त करता है। गाँव और शहर–दोनों ही उदासी के स्थायी ठिकाने बनते जा रहे हैं–

''मानव को मानव से जोड़ें
नहीं एकता हम सब तोड़ें
आगे–आगे राह दिखाता
सूरज चलता है
जब भी मिलता है श्रम का फल
मीठा मिलता है
नफरत, हिंसा, लालच छोड़ें।
मौसम के तेवर से लड़ता
पाँव न रुकता है
सच के साथ खड़ा रहता
कब लोहा झुकता है,
सोच–समझ हम खुद को मोड़ें।''

योगेन्द्र प्रताप मौर्य अपने समय के भोक्ता कवि हैं। उन्होंने जो देखा, जिया और भोगा उसे ही रचा है। आजादी के बाद जिस खुशहाल भारत का सपना देखा गया था, वह अब भी अधूरा है। इस संदर्भ में दिनकर की पंक्ति–''सिंहासन खाली करो कि जनता आती है'' आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। ग्रामीण संवेदना इस संग्रह की धड़कन है–

''गाँवों में सूनापन जीते
बेचारे घर हैं।''

अँधियारे का बिंब पूरे संग्रह में बार–बार रूप बदलकर आता है। आवाज है, पीड़ा है, पर उजाला नहीं–

''देख रहा हूँ उस बस्ती को
जहाँ नहीं उजियार।''

मौर्य जी मूलतः गाँव–मन के नवगीतकार है। इसलिए प्रकृति माटी, बादल, सूरज उनके गीतों में सहज रूप से उपस्थित है। उनके गीतों की अपनी माटी है, जो उन्हें समकालीन नवगीतकारों से अलग पहचान देती है। अपने समय के संताप, घुटन और असंतोष के बीच 'जहाँ नहीं उजियार मनुष्यता का' अधिवास रचनेवाला एक सशक्त नवगीत संग्रह है। योगेन्द्र प्रताप मौर्य व्यष्टि से समष्टि की वेदना के अप्रतिम गीतकार और अपने समय की सशक्त आवाज हैं।

समीक्षित पुस्तकः 'जहाँ नहीं उजियार' (नवगीत संग्रह) नवगीतकार : योगेन्द्र प्रताप मौर्य, पृष्ठः 127, प्रकाशन वर्ष–2025, प्रकाशकः कलमकार पब्लिशर्स, द्वारका, दिल्ली, मूल्यः 350

समीक्षा

जल–जंगल–जमीन की स्मृतियों में एक समकालीन काव्य–चेतना

चारुमित्र
एम.आई.जी–82 (एम/एफ)
रांची (झारखंड)
मो.–9471243970

नीरज नीर झारखंड की उस काव्य–परंपरा के संवेदनशील प्रतिनिधि हैं, जिसकी जड़ें मिट्टी, वन, जनजातीय संस्कृति, स्थानीय इतिहास और सामाजिक यथार्थ के भीतर गहराई तक फैली हुई हैं। उनकी कविताएँ पढ़ते हुए यह महसूस होता है कि वे केवल एक कवि नहीं, बल्कि इस भूगोल और यहाँ के जनजीवन के दस्तावेजकार भी हैं। झारखंड की धरती के रूप–रंग, हरियाली का विस्तार, पहाड़ी झरनों की जीवंत ध्वनि, जनजातीय समाज की सरलता, और बदलते समय के साथ इन सब पर आई दरारें–ये सब उनकी कविता में उतनी ही स्वाभाविकता से उपस्थित हैं, जितनी किसी लोकगायक की वाणी में अपने पहाड़ की स्मृतियाँ।

उनकी काव्य–दृष्टि का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि वे किसी भी प्रकार का कृत्रिम अलंकरण नहीं रचते। जो देखते हैं, वही लिखते नहीं, बल्कि जो जीते हैं, उसके भीतर उतरकर लिखते हैं। इसी कारण उनके यहाँ जल–जंगल–जमीन एक नारा नहीं, बल्कि एक साँस लेता हुआ जीवन–प्रदेश है। यह प्रदेश उनकी कविता में कभी सौंदर्य का विषय बनकर आता है, तो कभी विछोह, क्षरण और संकट की चेतावनी बनकर। उनकी कविताएँ मनुष्य और प्रकृति के संबंध को केवल पर्यावरणीय संरचना के रूप में नहीं, बल्कि एक भावनात्मक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक बंधन के रूप में देखती हैं।

झारखंड के आदिवासी समाज की छवियाँ उनकी कविता में केवल सहानुभूति की वस्तु नहीं, बल्कि आत्मीयता के केंद्र के रूप में उपस्थित हैं। यह आत्मीयता उनकी भाषा को सहज बनाती है और उनकी पंक्तियों में एक ऐसा स्पंदन भर देती है, जिसे पढ़ते हुए पाठक को लगता है कि वह किसी तिहाई रात में घने जंगलों से गुजरता हुआ उन आवाजों को सुन रहा है जिनमें धरती की हल्की थरथराहट भी शामिल है।

नीरज नीर का एक महत्त्वपूर्ण काव्य–विषय प्रकृति का मौन है। 'जंगल चुप हैं', 'नदियाँ चुप' और 'धरती और पानी' जैसी कविताएँ इस मौन के केवल शाब्दिक रूप नहीं हैं, बल्कि यहाँ प्रकृति की चुप्पी मनुष्य के खोते हुए संतुलन की गवाही बन जाती है।

जंगलों का चुप हो जाना कहीं दूर किसी संकट का संकेत है। नदियों का मौन किसी टूटन की कथा कहता है और धरती तथा पानी के भीतर जो थकान है, वह विकास के नाम पर चल रहे अतिक्रमणों का इतिहास है। कवि यह मौन सुनता है और पाठक को भी सुनने पर मजबूर कर देता है। इन कविताओं में विस्थापन की पीड़ा भी गहरे स्तर पर मौजूद रहती है। कभी मजदूरों का शहरों की ओर जाना, कभी नदी का बँध जाने से सूखना, कभी जंगल का सिकुड़ना–कवि इन सबके बीच एक अस्थिरता दर्ज करता है। इस अस्थिरता में दर्द है, पर हताशा नहीं। यही कारण है कि उनकी कविताएँ करुणा के बावजूद निराशा में नहीं बदलतीं। वे मनुष्य की जिजीविषा पर भरोसा करती हैं। नीरज नीर की कविता में खेती, किसानी, श्रम और रोजगार अनुभव के एक केंद्रीय स्थान बनाते हैं। उनके यहाँ खेत केवल उत्पादन की जगह नहीं, बल्कि एक जीवित चरित्र है। बीज का अंकुरण, मिट्टी की गंध, फसल पकने की खुशी, सूखे का भय, किसानों का संघर्ष– ये सब उनकी कविता के भीतर ऐसे उपस्थित हैं, जैसे जीवन के अनिवार्य मंत्र।

किसान की पीठ पर सूरज का झुकना, मजदूरों की हथेलियों की कठोरता, और धान रोपती औरतों के गीत–ये सब एक–एक दृश्य बनकर कविता में उतरते हैं। उनका यह लेखन ग्रामीण सौंदर्य का मिथकीकरण नहीं करता, बल्कि ग्रामीण जीवन की यथार्थमयी चमक को बिना सजावट दिखाता है। इस चमक में श्रम की ऊष्मा है और आशा की लय दिखती है।

नीरज जी झारखंड की मिट्टी से निकले वे कवि हैं जिनकी दृष्टि जल, जंगल और जमीन की संवेदना से बनी है। वे केवल कवि ही नहीं, कथाकार भी हैं. इसलिए उनकी भाषा में अनुभवों का ठोस जीवन, चरित्रों की आंतरिक गति और दृश्य–निर्माण की सूक्ष्म कला एक साथ दिखाई देती है। उनकी कविताओं की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे जीवन को किसी रूपक या संकेत से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष दृश्य की तीव्रता से
पकड़ते हैं। यही कारण है कि उन्हें पढ़ते हुए अनेक बार ऐसा लगता है मानो हम शब्द नहीं, किसी छवि को, किसी फ्रेम को, किसी जीवित दृश्य को देख रहे हों। इसीलिए उनकी कविता का मूल सौंदर्य चित्रोपमता या फोटोग्राफिक विवरण में है।

'जीवन के चाक पर' इनका तीसरा कविता संकलन है और इसमें फोटोग्राफिक कला अपने उरूज पर है। इसमें शामिल हर कविता एक अलग संसार खोलती है–कहीं खेतों में रोपाई करती औरतें हैं, कहीं शहर की भीड़ में खोते हुए श्रमिक, कहीं जंगल और सभ्यता के बीच खड़ा तनाव, कहीं पिता की चिंता का मौन, कहीं स्त्री–शक्ति का उजास, तो कहीं पितृसत्ता के विरुद्ध स्त्री–देह पर होनेवाले अत्याचारों का कठोर प्रतिकार।

संग्रह की पहली कविता 'धान रोपती औरतें' खेतों की उस ऊर्जा का रूपक है जिसे सामान्यतः श्रम कहा जाता है, लेकिन कवि उसे जीवन–सृजन के अनुष्ठान की तरह देखता है। नई फसल की उम्मीद में धान रोपती औरतें प्रकृति में समाधिस्थ होती हैं और प्रकृति उनमें यह पंक्ति उस संवाद को खोलती है जो स्त्री और धरती के बीच सदियों से है। रोपाई केवल श्रम नहीं, बल्कि धैर्य, सृजन, प्रतीक्षा और कबीर की साधना से मिलती हुई एक प्रक्रिया है। वे पानी में खड़ी होकर रोपाई करती हैं, पर दिखती ऐसी हैं, मानो प्रकृति के कान में कोई गुप्त मंत्र कह रही हों। धरती और स्त्री का यह जुड़ाव इतना गहरा है कि उदासी जैसे भाव उनमें टिकते ही नहीं। कविता देखें–नई फसल की उम्मीद में धान रोपती औरतें/ प्रकृति में समाधिस्थ होती हैं। और प्रकृति उनमें..... मैंने कभी किसी धान रोपती औरत को उदास नहीं देखा।''

कविता 'सीधे रास्ते नहीं चलती' में नीरज नीर कविता के मर्म को उजागर करते हैं–कविता रीढ़ की हड्डी को खींचकर सीधा करने का काम करती है, ताकि आदमी बना रहे आदमी। इस पंक्ति में कविता का सौंदर्य नहीं, उसका सामाजिक उत्तरदायित्व प्रखरता से व्यक्त होता है। कविता केवल भाषा नहीं बदलती, वह मनुष्य की आंतरिक रीढ़ को सीधा करती है। वह उन झुकावों को पहचानती है, जिनके कारण मनुष्य अपनी मानवीयता खो देता है। कविता आंतरिक साहस की छुपी हुई लौ को फिर से तेज कर देती है।

'कठपुतलियाँ' नीरज नीर की उन मार्मिक कविताओं में से है, जिसे आध्यात्मिक स्तर पर भी पढ़ा जा सकता है और राजनीतिक परिदृश्य से जोड़कर भी। ''कठपुतलियाँ नचायी जा रही हैं/ नाच की कुशलता पर/ आह्लादित हैं/ दर्शक मुग्ध हैं/ डोर अदृश्य है/ नचानेवाले मुस्कुरा रहे हैं...

''– इन पंक्तियों की चुप्पी, जनता के भ्रम और नियंत्रण की अदृश्य यांत्रिकता एक साथ दिखाई देती है। कठपुतलियाँ अपनी निपुणता पर खुश हैं, परंतु उन्हें ये अहसास नहीं कि नृत्य उनका नहीं, डोर थामने वाले का है। यह कविता आत्मभ्रम, छल, प्रदर्शन और आत्मसंतोष की विडंबना को बहुत तीखे ढंग से पकड़ती है।

स्त्री जिस क्षण घर की चौखट पार करती है, वह केवल दूरी नहीं, बल्कि सदियों की रूढ़ियों को पार करती है। 'घर से बाहर स्त्री' में कविता का यही भाव रूपायित होता है–''स्त्री जब बढ़ाती है/ चौखट से एक कदम बाहर/ वह तय कर लेती है/ आधी दुनिया की दूरी.... घर से बाहर निकलती स्त्रियाँ/ अपने दोनों हाथों में उठाए रखती है/ पृथ्वी का गोलार्द्ध।'' यह केवल भौतिक दूरी नहीं, बल्कि स्वतंत्रता, साहस, अपने अस्तित्व और आत्मनिर्णय की उद्घोषणा है। घर से बाहर निकलती स्त्रियाँ अपने दोनों हाथों में पृथ्वी का गोलार्द्ध उठाए रखती हैं–यह रूपक स्त्री की भूमिका को केवल घर–परिवार तक सीमित न मानकर उसे एक व्यापक, विश्व–निर्माता शक्ति के रूप में प्रतिपादित करता है।

उनकी भाषा की जो फोटोग्राफिक शैली है, उसकी सुंदर बानगी 'साग खोंटती लड़कियों' में मिलती है। साग खोंटती लड़कियों/ तन्मयता और कलात्मकता में होती हैं/ किसी चित्रकार की तरह...../ साग खोंटती लड़कियाँ/ महानगरों के उद्दीप्त सपने नहीं देखती... साग खोंटती लड़कियाँ गीत गाते हुए/अक्सर मुस्कुरा देती है... उन्हें मुस्कुराता देख / मुस्कुरा देती है धरती भी....'' यह कविता दिखलाती है कि साधारणता में भी एक गहरी तन्मयता है। यह कविता साधारण प्रतीतवाले श्रमों की सुंदरता को रेखांकित करती है, जो अनदेखे रह जाते जाते हैं। खेतों में बैठी ये लड़कियाँ अपने स्पर्श से धरती को ऐसी रचना में बदल देती हैं जिसमें मौन का सौंदर्य है और श्रम का संगीत है।

'जंगल और शहर' के बीच की दूरी कैसे मिटती जा रही है। इसकी बानगी कविता 'जंगल और शहर के बीच' में देखिए– ''बादल का एक टुकड़ा/ ठंडी हवाओं की पीठ पर बैठ जा रहा है/ शहरों से/ जंगलों की ओर.... ./ ठेकेदार, मुंशी, मैनेजर लपलपाते हैं जीभ/ जैसे जंगल में बाघ अपने खुरदरे जीभ से/ साफ करता है अपने शिकार की चमड़ी/ जंगल और शहर के अधबीचे रास्ते में कोई पड़ाव नहीं है।'' यह कविता उस खतरनाक मानसिकता का चित्र है, जो जंगल को संसाधन नहीं, शिकार समझती है। शहर से जंगल की ओर बढ़ती यह लालची नजरें प्रकृति को नुकसान पहुँचाती हैं तथा जंगल और शहर के बीच के रास्ते में कहीं कोई पड़ाव नहीं रहता। प्रकृति का सहज, शांत, आधारभूत प्रवाह, और मनुष्य की असंतुलित, हिंसक उपभोगी वृत्ति इन दोनों का टकराव कविता का मूल अर्थ रचता है।

शहरीकरण की त्रासदी और प्रवासन की विवशता पर नीरज नीर की कविता 'गमलों में खेत' अद्भुत व्यंग्य और पीड़ा से भरी है। शहर के लोग करें तो क्या करें–वो बड़े गमलों में सरसों छींट देते हैं, ताकि थोड़ी साग निकल आए। पर इस हल्के–से व्यंग्य में छिपा हुआ सच यह है कि खेतों का विनाश और श्रमिकों का विस्थापन–दोनों मिलकर एक ऐसी दुनिया बनाते हैं, जहाँ खेती का मूल भाव खोता जा रहा है। मलिन बस्तियों में समाना सीखते हैं गाँव से गए हुए मजदूर यह पंक्ति मनुष्य के जीवन–संघर्ष का वह विराट चित्र बन जाती है, जिसमें श्रम, भूख, मजबूरी और शहर की बेरुखी सब शामिल हैं। 'पहचान' कविता जंगलों और खेतों के बदलते भूगोल को बहुत सटीकता से दिखाती है। पहले जंगल खेतों के पास थे, कभी–कभी जंगली जानवर खेतों तक आ जाते थे, पर अब जंगल दूर चले गए हैं और जानवर घरों तक आ पहुँचते हैं। यह दृश्य केवल पर्यावरणीय बदलाव नहीं, बल्कि मनुष्य द्वारा प्रकृति पर किए गए अतिक्रमण का आइना है। कविता पूछती है–क्या असली अतिक्रमण जानवरों ने किया या मनुष्यों ने?

'रिश्ते' कविता में कवि बादल और पिता के बीच एक गहरी समानता स्थापित करता है। बादल का अपना कोई रंग नहीं होता–वह धरती के दुख का रंग ओढ़ लेता है, जैसे पिता परिवार की चिंता अपने चेहरे पर ओढ़ लेते हैं। यह रूपक प्रकृति के सत्य और मनुष्य के मनोभाव को साथ जोड़ देता है। पिता की चिंता किसी प्रदर्शन की नहीं, बल्कि मौन, निःस्वार्थ और निरंतर जिम्मेदारी की होती है और बादल की तरह ही वह भी अपनी छाया से संसार को ठंडक देता है।

'दंगे' में स्त्री कविता नीरज नीर के संवेदनशील और साहसी पक्ष को सामने लाती है–दंगों में जब नंगी की जाती है स्त्री/तो स्त्री नहीं नंगी होती है पूरी सभ्यता..। यह वाक्य केवल एक सामाजिक आलोचना नहीं, बल्कि इतिहास की उन भयावह घटनाओं की स्मृति है जहाँ स्त्री–देह को सबसे आसान युद्धभूमि बनाया गया, लेकिन कविता यहीं नहीं रुकती नंगी कर दी जाती हैं स्त्रियाँ / कभी–कभी तो बतलाकर डायन...../ लेकिन डायन बतायी गयी स्त्रियाँ / कभी नहीं खा पाई आज तक / नंगी करने वाले पुरुषों का कलेजा।'' झारखंड की डायन–प्रथा की पृष्ठभूमि में यह कविता एक सशक्त सामाजिक हस्तक्षेप बन जाती है।

उनकी अन्य कविताएँ– 'कि फिर हम मिले न मिले', 'फारस देश की बहादुर लड़कियाँ', 'मजबूरी का पेशा', 'उम्मीद की किसानी', 'पिता के जाने के बाद', 'विस्मृति', 'पिता का अनुभव', 'रूआँसे चेहरेवाले लोग', 'मणि राम पंजाब नहीं जाना चाहता है', 'देह की देहरी पर प्रेम' इत्यादि–सभी उनकी काव्यदृष्टि के विविध रंग हैं। कहीं स्त्री का साहस, कहीं श्रम का विवश सौंदर्य, कहीं प्रवास की थकान, कहीं पिता का मौन, कहीं प्रेम के दैनंदिन भाव–हर कविता नीरज नीर के भीतर मौजूद मनुष्य के बहुआयामी स्वरूप को अभिव्यक्त करती है।

जंगल चुप हैं, नदियाँ चुप, जंगलों में, धरती और पानी ऐसी ही कविताएँ हैं, जिनमें उनका प्रकृति प्रेम मुखरित होता है तथा जल–जंगल के संवर्धन और संरक्षण की भावना परिलक्षित होती है। उनके वर्तमान संग्रह में एक स्पष्ट रेखा दिखाई देती है–प्रकृति, श्रम, स्त्री, संघर्ष और आशा की। नीरज नीर की कविता नैराश्य को स्थान नहीं देती, वह युद्ध नहीं, बुद्ध की तलाश करती है।

उनकी कविताएँ पढ़ते हुए कई बार आँखें उस दृश्य का अनुभव करने लगती हैं और मन में एक टीस उठती है। यह टीस केवल पीड़ा की नहीं, बल्कि उस मानवीय संवेदना की है जिसे कविता जगाती है। 'जीवन के चाक पर' नीरज नीर के अनुभव, उनके समय, उनकी भूमि, उनके लोगों और उनके संघर्षों की ऐसी सृजनात्मक पुनर्रचना है, जो पाठकों के मन में बहुत देर तक रहती है।

नीरज नीर की भाषा सरल है, पर साधारण नहीं। यह एक ऐसी भाषा है जो बोलचाल की लय को भी साथ लेकर चलती है और काव्यात्मक संवेदना को भी। उनके बिंब स्थानीय जीवन से आते हैं–मिट्टी की खुशबू, नदी का पानी, जंगल की पगडंडियाँ, पहाड़ों की चट्टानें, धान के पौधे, औरतों की हँसी, बच्चों की दौड़–इन सबके सहारे वे बड़े विचारों को सहजता से व्यक्त करते हैं। उनकी संरचना अक्सर छोटी–छोटी पंक्तियों में होती है, जिसमें अर्थ की परतें गहराती जाती हैं। पाठक को यह भ्रम रहता है कि वह एक सरल कविता पढ़ रहा है, पर पढ़ते–पढ़ते उसे एहसास होता है कि वह एक गहरे भाव–जगत का हिस्सा बन चुका है।

नीरज नीर का यह संकलन केवल पढ़ने का अनुभव नहीं, महसूस करने का अनुभव रचता है। उनकी पंक्तियाँ दृश्य बन जाती हैं। पत्तों पत्तों की

सरसराहट सुनाई देती है। पहाड़ी रास्तों की नमी महसूस होती है। किसी विस्थापित मजदूर के चेहरे का तनाव, किसी पुत्र के भीतर पिता की स्मृति, किसी स्त्री की थकी आँखों का साहस–ये सब पाठक को भीतर तक छूते हैं।

कई बार आँखें नम हो जाती हैं, कई बार मन में टीस उठती है, तो कई बार एक अनजाना भरोसा जागता है कि मनुष्य का संसार अभी खत्म नहीं हुआ उसमें अब भी प्रकाश बचा है। नीरज नीर का यह कविता–संकलन झारखंड की प्रकृति, संस्कृति, संघर्ष और आशा का एक जीवंत दस्तावेज है। यह संकलन उस संवेदना से जन्मा है, जो किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि एक पूरी धरती की धड़कन है। कवि ने जिस गहराई से जल–जंगल– जमीन को काव्य में रूपांतरित किया है, वह उन्हें समकालीन हिंदी कविता में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

विश्वास है कि यह संकलन पाठकों का स्नेह, आदर और आत्मीयता प्राप्त करेगा। आप भी इन कविताओं को पढ़ें, उन्हें मन में बसाएँ और उन अनुभवों की ओर लौटें, जिन्हें कवि ने अपनी पंक्तियों से जीवित कर दिया है।

इस संग्रह की कविताएँ केवल पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि महसूस करने के लिए हैं। इन्हें पढ़ते हुए लगता है कि जैसे कवि ने समय के चाक पर मिट्टी रखकर उससे मनुष्य की आकृति बनाई है–उसकी थकान भी, उसकी मुस्कान भी, उसका संघर्ष भी, और उसकी आशा भी। मुझे विश्वास है कि यह संकलन पाठकों का खेह प्राप्त करेगा। आप भी इन कविताओं को पढ़ें, गुनें और उनमें बसे जीवन को महसूस करें।

'जीवन के चाक पर' लेखक: नीरज नीर, प्र: स्वतंत्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, मूल्य–299/

विज्ञान व्रत, नोएडा,
मो. 9810224571

ग़ज़लें

उनसे मेरा झगड़ा है
यानी अब तक रिश्ता है
मुझको सुनकर चुप–सा है
शायद वो कुछ समझा है
सदियों से हमवार नहीं
आख़िर मेरा रस्ता है
वो मेरा हो जाए तो
मेरा सब–कुछ उसका है
कैसे उसको बतलाऊँ
मुझको वो जो लगता है।

2
आपमें जब है ख़ज़ाना
छानते हो क्यों जमाना
राह मेरी आप हैं तो
रास्ता फिर क्यों बनाना
मैं कभी जब याद आऊँ
आप मुझको याद आना
आपका चेहरा नहीं जो
क्यों उसे अपना बताना
वो कि जिसका हल नहीं है
प्रश्न ऐसा क्यों उठाना।

8
वो मेरी पहचान जिया
यानी इक़ तूफान जिया
अपने घर में रहकर भी
उसने सिर्फ़ मकान जिया
जब था मुश्किल जीना,
वो जीने का अरमान जिया
मंजिल कैसे मिल जाती
रस्ता जो आसान जिया
अपने घर में जाने क्यों
उसने बस सामान जिया।

4
फ़िर चली पुरवा हवा
ज़ख्म फिर ताज़ा हुआ
मैं उसी में डूबता वो
मगर दरिया न था
जो कि मुझ पर मर मिटा
मैं उसी का हो गया
हादिसा आख़िर हुआ
कोई कैसे रोकता
बेखुदी में जो कहा
क्या सदा वो सच हुआ
रास्ता जब मैं बना
मंज़िलें वो पा गया
सोचता मैं जो रहा
वो कभी का कर चुका।

5
वो मेरा दीवाना भी है
पर थोड़ा बेगाना भी है
यों जाना–पहचाना भी है
लेकिन गुप्त ख़ज़ाना भी है
मुझ पर प्यार ज़ताना भी है
सबको यह समझाना भी है
मेरे दिल में अक्सर उसका
अब तो आना–जाना भी है
जो कुछ मेरे मन में है ना
मुझको अब दिखलाना भी है।

6
वो जिसे सब कुछ पता
पूछता है क्या हुआ
हो चुका हूँ आपका
अब मुझे क्या सोचना
वो तो बिल्कुल चुप रहा
पर ज़माने ने सुना
था न मेरा जो कभी
क्यों मुझे वो सोचता
क्या पता मंजिल उसे
बस पता है रास्ता
कौन हूँ मैं कौन हूँ
चल बसा कहता हुआ
था जिसे मालूम सब
है वही अब लापता

7
पास जब उनके रहूँ तो
दूर सबको पर दिखूँ तो
आप जैसा ही लगूँ तो
यह करिश्मा भी करूँ तो
आपने छोड़ा जिसे कल
रास्ता वो ही चुनूँ तो
आप बिल्कुल चुप रहें जब
आपको मैं तब सुनूँ तो
लोग मुर्दा जब समझ लें
मैं अचानक जी उठूँ तो
वो मुझे मुझसे घटाएँ
शेष भी मैं ही बचूँ तो।

8
खुद में कब तक रहता मैं
आख़िरि क़ैद से छूटा मैं
अक्सर जिससे झगड़ा मैं
अब हूँ उसकी दुनिया मैं
वो था मोम सरीखा, पर
उसको देख के पिघला मैं
कल वो मेरी मंजिल था
हूँ अब उसका रास्ता मैं
वो मुझको जब ढूंढ़ चुका
क्यों तब से ही खोया मैं
जब से वो गुलफ़ाम हुआ
खुशबू होकर बिख़रा मैं
जिसने मेरा क़त्ल किया
क्यों हूँ आज उसी का मैं

समीक्षा

तुम्हारे प्रेम की पंखुरी

कुमार विजय गुप्त
मुंगेर (बिहार)
7004980465

काव्य के हर एक युग में प्रेम किसी ने किसी बहाने अपनी उपस्थिति दर्ज करता रहा है। दरअसल, प्रेम इतना व्यापक और इतना बहुअर्थक शब्द है कि यह रचनाकारों का सर्वाधिक प्रिय विषय रहा है। है तो ढाई अक्षर का शब्द, किंतु यह पूरे ब्रह्मांड को अपने आगोश में समाये हुए है। डॉ अंजनी कुमार सुमन मूलतः ग़ज़लकार हैं और उन्होंने इस विधा में अपनी एक खास पहचान बनायी है। उनके श्रोता भी हैं और पाठक भी। वे अपनी रचनाओं में बेहद मुखर और बहुस्तरीय बातों को रखते हैं और संवेदना के स्तर पर अपनी पहचान को विस्तार देते हैं।

इधर डॉक्टर अंजनी कुमार सुमन ने समकालीन कविताओं पर भी काम किया है और जिसकी परिणति उनके सद्य प्रकाशित प्रेम कविता संग्रह 'तुम्हारे प्रेम की पंखुड़ियाँ में हुई है, इस संग्रह में उनकी 40 कविताएँ सन्निहित हैं, जिनका मूल स्वर प्रेम के विभिन्न स्वरूप हैं । इनमें प्रेम की भाव विह्वलता है तो विरह वेदना भी है, मिलन की आकुलता है तो भी छूट जाने का आंतरिक भय भी है। उनकी कविताओं के बरक्स पुस्तक के ब्लर्ब पर प्रोफेसर रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव परिचय दास कहते हैं कि 'प्रेम शब्द नहीं एक दीर्घ साँस है, जो युगों से कविता को जीवित रखे हुए हैं। वह किसी एक युग की संपत्ति नहीं, एक रचना का संदर्भ नहीं, बल्कि समूची काव्य धारा का अविरल स्रोत है। जिससे समस्त शब्दों को अर्थ मिलता है और कवि को आत्मा। डॉक्टर अंजनी कुमार सुमन के इस नवीनतम प्रेम कविता संग्रह 'तुम्हारे प्रेम की पंखुड़ियाँ' में प्रेम की वही अनश्वर लय सुनाई देती है, कोमल गहन, किंतु अत्यंत सजग।'

कवि अंजनी कुमार सुमन अपनी कविताओं में प्रेम के बियाबाँ में उलझते–पुलझते नहीं, बल्कि सीधे इसकी गहराई में उतरते हैं। इन कविताओं में प्रेम को पाने की उत्कट इच्छा निहित है। उनकी एक कविता 'इजाजत' की पंक्तियों पर गौर किया जाय–''तुम्हारी बिखरी हुई /चाहतों को भी तो/ समेटा है/ अपनी चाहत का नाम देकर।'' इसी तरह उनकी कविता 'सिर्फ तुम' की पंक्तियाँ हैं–''क्योंकि/ मेरे इस वीरान /जिस्म की/ परछाई में /हर कदम /साथ साथ/ चलती रहती हो /सिर्फ तुम!''

प्रेम के बारे में एक प्रचलित उक्ति है कि प्रेम पाने का ही नहीं, बल्कि खोने का नाम भी है। प्रेम के एकांत में यह भाव और भी प्रबल हो जाता है. एक कविता है 'जब भी तुम दूर होती हो'. पंक्तियाँ हैं–''नहीं मिलता है /मेरी निष्ठुर कठोरता को /कोई मुलायम सिरहाना।'' कविता किसी बनावट से काफी दूर भोगे हुए यथार्थ की तरह प्रस्तुत की गई है।

इस संग्रह में प्रेम के अलावा भी कुछ अन्य विषय की कविताएँ हैं, जिनमें कवि का संघर्ष और संयम दोनों दृष्टिगोचर होता है। उनकी यह कविता है–'मैं पतंग हूँ', पंक्तियाँ देखें –''लड़ता रहा, उड़ता ही रहा / निरंतर लगातार /अपने विरुद्ध रहे/ उन कुटिल हवाओं/ और साजिशदार पतंगों से /उनके बेबस हो जाने /एवं हर जाने तक।''

इस खूबसूरत काव्य संग्रह में दिल को छूति हुई कई कवितायें हैं। एक कविता माँ के प्रति श्रद्धा के अनूठे नमूने की तरह लिया जा सकता है, पंक्तियाँ हैं –''माँ के पाँव के नीचे की /दिव्य सतह को छूकर ही/ निर्माण की गई होगी/ स्वर्ग की/चमकदार छत।'' एक दूसरी कविता है–'औरत के हाथ की लकीरें', जिसमें समाज और परिवार में एक औरत की दुरुह और दुधारी जिंदगी और उनकी मनोदशा का बेहतरीन चित्रण किया गया है। पंक्तियाँ देखी जाए–''क्या सच में औरत के भाग्य की लगी लकीरें /घिस घिसकर/ अपना स्वरूप बदलती हैं /जो मायके के लिए अलग/और ससुराल के लिए अलग हो जाती हैं।''

संग्रह की प्रेम कविताओं की कतार में समाज की उन स्थितियों पर भी नजर रखी गई है जो हमारे समाज के समीकरण पर बारहा चोट करती है। एक सजग रचनाकार हमेशा अपने आस–पास घटित हो रही घटनाओं पर चौकन्ना और अपने समाज के प्रति संवेदनशील रहता है। इस संग्रह की एक कविता है 'बर्बरीक हो गए हैं', पंक्तियाँ हैं –''हम देख रहे हैं हर अन्याय पर/ धृतराष्ट्र की मंद मुस्कान/और जुए में एक–एक कर / हारे हुए सबके अधिकार।'' दूसरी ओर समाज का एक ऐसा ही वर्ग है जिसे हो रही तब्दीलियाँ और परिवर्तन की जगह अपने अस्तित्व की चिंता होती है, क्योंकि उसके दुष्कर जीवन में सिर्फ एक ही मुद्दा होता है रोजी–रोटी। कविता 'फर्क' की पंक्तियाँ हैं–''कोई फर्क नहीं पड़ता /सावन आए या भादो/ गरीब और निर्धनों की / घास–फूस से बनाई झोपड़ी के अंदर का/ बचा खुचा सुख भी/ नीलम हो ही जाता है।''यह स्थिति चिंतनीय है।

संग्रह की कविताएँ पाठकों से सीधा संवाद करती हुई प्रतीत होती हैं । चूँकि अंजनी कुमार सुमन मूलतः गीत और ग़ज़लों के कवि हैं, इसलिए समकालीन कविता के मानकों पर उन्हें आगे और भी काम करना है, लेकिन एक बात तो स्पष्ट है कि इन कविताओं में ईमानदारी और यथार्थ का चिंतन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। समष्टि से व्यष्टि होने का जो एक चिंतन और अर्थ है वह इन कविताओं में है। उन्होंने इसे अपनी एक कविता में स्पष्ट किया है शीर्षक है–'मीठी कविताएँ'–''जब भी/ किसी वेदनाओं का चित्र /उकेरूँगा /तो अपनी वेदना भूल कर /लिख डालूँगा/ तुम्हारे ही /भोगे हुए अनकहे दुख /और तकलीफों को।'' इसलिए इस संग्रह के बारे में साहित्यकार प्रदीप पाल का कथन है, ''जैसे प्रेम के पंखुड़ियाँ को छूकर प्रेम की नरमाहट और प्रेम की खुशबू महसूस कर लेना है। इन कविताओं में डूबते हुए पाठक को प्रेम पथ का पथिक हो जाने की अनुभूति होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।'' पुस्तक का आवरण व गेटअप काफी खूबसूरत है। कवि के इस संग्रह का स्वागत है। उन्हें हार्दिक शुभकामनाएँ।

पुस्तक :तुम्हारे प्रेम की पंखुड़ियाँ
लेखक : डॉ. अंजनी कुमार सुमन ,
कुल पृष्ठ : 103, प्रकाशक :श्वेतवर्णा प्रकाशन, दिल्ली ।

आलेख

ऋषियों की तपोभूमि 'चंदौली' प्राचीन काशी है

गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र'
आदिलनगर, विकासनगर
लखनऊ दूरभाष 09956087585

पूर्वी उत्तर प्रदेश की पावन भूमि पर स्थित चंदौली जनपद को सामान्यत: आधुनिक प्रशासनिक इकाई के रूप में देखा जाता है; किंतु इतिहास, पुरातत्त्व और आध्यात्मिक परंपराओं की दृष्टि से यह क्षेत्र प्राचीन काशी परंपरा का अविभाज्य अंग रहा है। काशी केवल वर्तमान वाराणसी तक सीमित नहीं रहीं, अपितु प्राचीन काल में इसका सांस्कृतिक, धार्मिक विस्तार चंदौली मिर्जापुर, सोनभद्र और गाजीपुर तक फैला हुआ था। माँ गंगा ने संगम नगरी प्रयागराज के पश्चात् विन्ध्य पर्वत को छूते हुए वाराणसी के दक्षिण दिशा से बाबा विश्वनाथ मंदिर वाले भाग काशी को अपनी गोद में लिया, तो तपस्थली वाले भाग प्राचीन काशी चंदौली को भी गाजीपुर के पूर्व ही उत्तर दिशा से काशी के दोनों सम्पूर्ण भाग को सामान्य रूप से गौरवान्वित किया है।

प्राचीन काशी चंदौली के भौगोलिक मानचित्र पर ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्त्व के रसूलपुर से वैराठ तक आज भी विद्यमान है। इसकी महत्ता पौराणिक ग्रंथों में विधिवत् वर्णित है। यहाँ ऋषियों की तपोभूमि, शिव–शाक्ति उपासना और वैदिक संस्कृति की सशक्त छाप आज भी विद्यमान है। चंदौली का नाम
चंद्रशाह नामक बरहौतिया राजपूत के नाम पर बताया जाता है, जिन्होंने यहाँ एक किला बनवाया था।

चंदौली की प्राचीनता :

यह पूरा जिला काशी राज्य के अधिकार में था। इस जिले से संबंधित अनेक कथाओं के अतिरिक्त यहाँ प्राचीनकाल की मूल्यवान धरोहरों के प्रमाण पाए गए हैं। ईंट आदि के अवशेष जहाँ–तहाँ विखरे पड़े है, अनेक तालाब और कुंड हैं। एक बहुत प्राचीन क्षेत्र बलुआ है जो सकलडीहा तहसील से 22 किलोमीटर दक्षिण गंगा नदी के तट पर स्थित है। यहाँ हिन्दुओं का एक धार्मिक मेला हर वर्ष माघ महीने में मौनी अमावस्या के दिन लगता है। यह पश्चिम वाहिनी मेला के नाम से जाना जाता है। सकलडीहा तहसील का
गाँव एक महान अघोरेश्वर संत कीनाराम की जन्मभूमि है। वे वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, इसका शिव और शक्ति में गहरा विश्वास था। हेतमपुर गाँव एक प्राचीन स्थान है। यहाँ एक किला है, जिसे हेतमपुर किला कहा जाता है। कहा जाता है कि इसको 14वीं–15वीं शताब्दी के बीच राजा टोडरमल के द्वारा निर्मित कराया गया था, जो शेरशाह सूरी के राज्य में निर्माण पर्यवेक्षक थे। मुगलकाल के बाद जागीरदार हेतमखां ने इस पर कब्जा कर लिया।

चंदौली के राजदरी, देवदरी, चन्द्रप्रभा क्षेत्र तथा आसपास की पहाड़ियों में शैलचित्र, पत्थर के औजार और गुफाएँ मिली हैं। ये प्रमाण बताते हैं कि यहाँ आदिम मानव निवास करता था और यह क्षेत्र जीवन, साधना और प्रकृति–पूजा का केंद्र था।

चंदौली का चौसठी देवी क्षेत्र चन्द्रप्रभा वन्य क्षेत्र और आसपास के स्थत बौद्ध काल में भी महत्त्वपूर्ण रहे। समीप स्थित सारनाथ से इसका सीधा सांस्कृतिक संबंध रहा। बौद्ध भिक्षु ध्यान और साधना हेतु इन वनों में निवास करते थे। काशी को मोक्षदायिनी नगरी कहा गया है– 'काश्यां भरणान्मुक्ति।' परंतु काशी की यह आध्यात्मिक ऊर्जा केवल एक नगर तक सीमित नहीं थी। चंदौली उस ऊर्जा का वनांचली और तपस्वी स्वरूप रहा। चंदौली क्षेत्र में शिवलिंगों, देवी मंदिरों और शक्ति–स्थलों की प्राचीन परंपरा है। यहाँ की लोक मान्यता के अनुसार भगवान शिव ने काशी क्षेत्र की रक्षा हेतु इन वनों में विचरण किया।

चंदौली में स्थित चन्द्रप्रभा नदी और वन क्षेत्र को अत्यंत पवित्र चंद्रप्रभा तीर्थ के रूप माना जाता है। यहाँ स्थित जलप्रपात और कुंडों को प्राचीन काल में तपस्या और खान के लिए श्रेष्ठ माना गया। यह स्थान केवल प्राकृतिक सौंदर्य ही नहीं, अपितु आध्यात्मिक शांति का केंद्र रहा है।

चंदौली है ऋषियों की तपोभूमि :

चंदौली भूभाग पर हजारों वर्षों से अब तक ऋषि– महर्षियों के तप करने का प्रमाण उपलब्ध है। गंगा नदी के तटों से लेकर वाणगंगा और चकिया नौगढ़ के जंगलों तक विस्तृत यह क्षेत्र सभी दृष्टिकोण से सुरक्षित और शांतिप्रिय रहा है, जहाँ सैकड़ों वर्षों तक एक मुद्रा में बैठे ऋषि–मुनियों ने साधना की। प्राचीन काशी में ही महर्षि याज्ञवल्क्य को चकिया के पठारी तथा जंगली क्षेत्र की शांति खींच लायी थी। जहाँ उन्होंने एक पैर पर खड़े होकर सैकड़ों वर्ष तपस्या किया। भगवान शंकर से नाराज होकर महर्षि वेदव्यास ने प्राचीन काशी (चंदौली) के साहूपुरी (व्यासनगर) में आए, जहाँ अपना क्रोध–त्याग किया और वहीं साधना करने लगे। महर्षि विश्वामित्र ने अपनी कर्मस्थली और लीलास्थली नौगढ़ क्षेत्र को बनाया, इसका प्रमाण कर्मनाशा के रूप में विस्तृत है। महाराज दुष्यंत और शकुंतला की प्रेम कहानी इसी भूभाग से जुड़ी है, जहाँ मगरीर में महाराज भरत के जन्म का प्रमाण मिलता है, इनके नाम पर ही इस देश का नाम भारत पड़ा। विद्वानों का यह भी मानना है कि इस समृद्ध क्षेत्र में कभी हैहयवंशी क्षत्रियों के संहार हेतु यमदग्नि–पुत्र परशुराम ने अशांति फैलायी थी, जिसका प्रमाण रायल ताल को माना जाता है।

लोक आस्थाएँ एवं परम्पराएँ :

चंदौली की ग्राम्य संस्कृति में आज भी काशी की परंपराएँ जीवित हैं। श्रावण मास की शिव–पूजा, कार्तिक स्नान, लोक देवी–देवताओं की आराधना, संस्कारों में वैदिक मंत्रोच्चार यह सब दर्शाता है कि चंदौली केवल भौगोलिक इकाई नहीं, अपितु यहाँ के लोक–जीवन में आध्यात्मिक निरंतरता व्याप्त है।

चंदौली की लोक संस्कृति में काशी की छवि स्पष्ट दिखाई देती है। यहाँ की भोजपुरी–काशी बोली में राम, शिव, गंगा और काशी से जुड़े असंख्य लोकगीत प्रचलित हैं। विवाह, जन्म और पर्वों पर गाए जानेवाले गीतों में काशी को पुण्य स्थल के रूप में स्मरण किया जाता है। यहाँ के शिवरात्रि मेले, नवरात्र उत्सव, कार्तिक पूर्णिमा आदि आयोजनों में काशी–परंपरा की झलक मिलती है। जिले के प्रमुख व्यक्तियों में नामवर सिंह, अवध बिहारी सिंह (कवि जी), संत रमैया, अभिनेत्री लीला मिश्रा, गिरिजा देवी, अखण्डानंद सरस्वती, शिवप्रसाद सिंह, कमलापति त्रिपाठी, लालबहादुर शास्त्री सहित वर्तमान केन्द्रीय रक्षा मंत्री श्री राजनाथ सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं।

चंदौली का वर्तमान स्वरूप :

आज का चंदौली जनपद आध्यात्मिक विरासत और आधुनिक विकास के संतुलन का उदाहरण है। वाराणसी से 20 मई, 1997 में अलग होकर चंदौली जनपद बना। यह उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित है, जो वाराणसी से 30 किलोमीटर दूरी पर है। यह जनपद वाराणसी, मिर्जापुर, सोनभद्र से घिरा हुआ है, जो इसके ऐतिहासिक–धार्मिक महत्त्व को और पुष्ट करता है।

चंदौली को उत्तर प्रदेश का 'धान का कटोरा' कहा जाता है। उपजाऊ भूमि, नहर प्रणाली, कर्मनाशा और चन्द्रप्रभा के जल से परिपूरित यह क्षेत्र ऋषि के साथ–साथ अब औद्योगिक और व्यापारिक गतिविधियों की ओर भी बढ़ रहा है। यहाँ पर्यटन की अपार संभावनाएँ हैं।

यहाँ चन्द्रप्रभा वन्यजीव अभयारण्य, जलप्रपात, ऐतिहासिक स्थल और अनेक धार्मिक स्थल पर्यटकों के आकर्षण के केंद्र हैं। यदि इनका समुचित विकास किया जाए, तो चंदौली आध्यात्मिक पर्यटन मानचित्र पर विशेष स्थान प्राप्त कर सकता है। उत्तर प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ द्वारा एक जनपद एक उत्पाद योजना के अंतर्गत चंदौली की जरी जरदोजी का चयन किया गया है, साथ ही एक जनपद–एक व्यंजन योजना के अंतर्गत चोखा भात / सत्तू को प्रमुख व्यंजन के रूप में मान्यता दी गई है। इससे मनित उत्पाद और व्यंजन को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त होगी तथा इससे संबंधित रोजगारों में आशातीत वृद्धि होगी। अस्तु, चंदौली और काशी का पुराना अटूट संबंध है। जहाँ काशी (वाराणसी) ज्ञान, मोक्ष और चेतना का केंद्र रही, वहीं चंदौली उसका वन्य, तपस्वी और प्राकृतिक विस्तार क्षेत्र कहा जा सकता है।

चंदौली ने काशी की आत्मा को अपने वनों, नदियों, लोक जीवन और आस्थाओं में सुरक्षित रखा है। आज आवश्यकता है कि इस विरासत को पहचाना जाए, संरक्षित किया जाए और आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाया जाए। चंदौली केवल एक जनपद नहीं, अपितु यह प्राचीन काशी की जीवित स्मृति है।

आलेख

'एक पुस्तक, अनेक संदेश' जीवन की अदृश्य शिक्षिका

विभा कानन (शिक्षिका)
मदुकरई, कोयम्बतूर, तमिलनाड
फोन 8957637355

शब्दों के सागर में ज्ञान की गहराई मनुष्य के जीवन में ज्ञान का प्रकाश जितना आवश्यक है, उतना ही उसे दिशा देनेवाला माध्यम भी। यह दिशा, यह प्रेरणा, यह दृष्टि–कई बार शब्दों के मौन संसार से प्राप्त होती है। पुस्तकें वे मौन शिक्षक हैं जो बिना बोले, बिना किसी दिखावे के हमें जीवन का सार सिखाती हैं।

"एक पुस्तक, अनेक संदेश" – यह वाक्य अपने भीतर एक गहरा जीवन–दर्शन समेटे हुए है। हर पुस्तक अपने शब्दों में निहित अनुभव, दृष्टिकोण और भावनाओं के माध्यम से पाठक को कुछ न कुछ नया सिखाती है।

ज्ञान का अनंत स्रोत – पुस्तक का वास्तविक स्वरूप :

मानव सभ्यता के विकास में पुस्तकों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। जब मनुष्य ने अपने अनुभवों को शब्दों में ढालना सीखा, तभी से ज्ञान का संचरण संभव हुआ। एक पुस्तक में संचित विचार पीढ़ियों से पीढ़ियों तक यात्रा करते हैं। यही पुस्तकें समाज की स्मृति बन जाती हैं जो बताती हैं कि मनुष्य ने क्या सोचा, कैसे जिया और किन मूल्यों को अपनाया।

मौन में बोलती पुस्तकें – आत्मा की शिक्षक :

पुस्तकें कभी बोलती नहीं, पर उनके शब्द हृदय के भीतर गूंजते रहते हैं। एक अच्छी पुस्तक मनुष्य के विचारों को परिष्कृत करती है। वह हमें बताती है कि हर परिस्थिति में एक दृष्टि होती है, हर समस्या में एक समाधान छिपा है।

विवेकानंद की रचनाएँ हमें साहस और आत्मविश्वास सिखाती हैं, प्रेमचंद की कहानियाँ समाज की सच्चाइयों का आईना दिखाती हैं, कालिदास की कविताएँ सौंदर्य और संवेदना का भाव जगाती हैं और गांधी की पुस्तकें अहिंसा व सत्य का अमर संदेश देती हैं।

एक ही पुस्तक – अनेक अर्थ, अनेक दृष्टियाँ :

एक ही पुस्तक अलग–अलग पाठकों को अलग–अलग अर्थ देती है। वही गीता एक योद्धा के लिए प्रेरणा है, एक दार्शनिक के लिए ज्ञान का सार और एक साधक के लिए भक्ति का प्रतीक। यही पुस्तकों की सुंदरता है – वे हर व्यक्ति को उसके स्तर पर समझ में आती हैं, और उसके अनुरूप उसे शिक्षित करती हैं।

जीवन का साथी – पुस्तक का मानवीय स्पर्श :

पुस्तकें केवल ज्ञान का स्रोत नहीं, बल्कि भावनात्मक विकास की भी आधारशिला हैं। वे सिखाती हैं–

'धैर्य और संयम'
'संवेदना'
'प्रेरणा और आत्मविश्वास'
'विवेक और संतुलन।'

वे हमारे विचारों को दिशा देती हैं और हमें एक बेहतर मनुष्य बनने की ओर अग्रसर करती हैं।

तकनीकी युग में पुस्तक संस्कृति का पुनर्जागरण :

आज मोबाईल और इंटरनेट के युग में लोगों की पढ़ने की आदत कम होती जा रही है, लेकिन पुस्तकें अब भी अपनी गरिमा बनाए हुए हैं। वे हमें रुककर सोचने की आदत देती हैं, आत्मसंवाद का अवसर प्रदान करती हैं। एक पुस्तक पढ़ना केवल ज्ञान अर्जित करना नहीं, बल्कि स्वयं से मिलने का अनुभव है।

एक पुस्तक का प्रभाव – प्रेरक उदाहरण :

महात्मा गांधी ने कहा था कि 'गीता' ने उन्हें हर संकट में शक्ति दी। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की 'विंग्स ऑफ फायर' ने लाखों युवाओं को सपना देखने और पूरा करने की प्रेरणा दी। रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' ने भारतीय आत्मा की आवाज को विश्व तक पहुँचाया। इन सबके माध्यम से स्पष्ट है–एक पुस्तक अनेक जीवन को दिशा देती है, अनेक संदेश देती है।

बाल मन पर पुस्तकों की अमिट छाप :

बालक के मन में ज्ञान के बीज बोने का सर्वोत्तम साधन है–पुस्तक। "पंचतंत्र", "हितोपदेश" और "अकबर–बीरबल" जैसी कहानियाँ न केवल मनोरंजन करती हैं, बल्कि जीवन के गूढ़ संदेश भी देती हैं। बाल्यकाल में पढ़ी गई पुस्तकें जीवनभर साथ रहती हैं, जैसे एक मौन मित्र जो हर कदम पर मार्गदर्शन करता है।

आत्मविकास का साधन :

हर पुस्तक हमें कुछ नया सिखाती है–कभी धैर्य, कभी साहस, कभी विचार की स्वतंत्रता। वह आत्मचिंतन की प्रेरणा देती है, और धीरे–धीरे हमारे दृष्टिकोण को परिष्कृत करती है। वह हमें सिखाती है कि जीवन केवल घटनाओं का नाम नहीं, बल्कि अनुभूति का विस्तार है।

पुस्तक – जीवन की अदृश्य शिक्षिका :

एक सच्ची पुस्तक वही है जो हमें भीतर से बदल दे। वह हमें बताती है कि जीवन संघर्षों से नहीं, सीखों से बनता है। वह अदृश्य रूप से हमारे भीतर कार्य करती है–हमारी सोच, आचरण और संवेदना को दिशा देती है। यही कारण है कि पुस्तक को "मौन गुरु" कहा गया है।

ज्ञान की लौ जो कभी नहीं बुझती :

पुस्तकें हमारे जीवन की वह रोशनी है, जो हर युग में अमर रहती है। वे न समय से पुरानी होती है, न मूल्य से। एक पुस्तक अनेक संदेशों की वाहक होती है–वह न केवल हमें ज्ञान देती है, बल्कि जीवन जीने की कला भी सिखाती है। आज जब जीवन की गति तेज है, मनुष्य उलझनों में है, तब एक पुस्तक का शांत स्पर्श आत्मा को दिशा देता है।

वास्तव में –"पुस्तकें जीवन की अदृश्य शिक्षिका हैं जो बिन बोले हमें जीने की कला सिखाती हैं।"

चिंतन

कुरुक्षेत्र की भूमि पर गांधारी–कृष्ण संवाद की प्रासंगिकता

सुभाषचन्द्र झा
बिहार प्रशासनिक सेवा, सरकार के विशेष सचिव
क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार, भागलपुर प्रमंडल, भागलपुर
मो0–9431208428

कुरुक्षेत्र की उस रक्तरंजित भूमि पर गहरी संध्या का खौफनाक अंधकार उतर रहा था, एक ऐसा अंधकार जो केवल सूर्य के अस्त होने से नहीं, अपितु एक पूरे युग के अंत होने से जन्मा था। लाखों सुहागिनों के सिन्दूर मिट जाने से, करोड़ों माताओं की कोख उजड़ जाने से और हस्तिनापुर के सौ–सौ दीपों के बुझ जाने से उपजा था। उस महाविनाश की जहरीली सरजमीं पर जहाँ गिद्ध, सियारों का दर्दनाक आर्तनाद गूंज रहा था, जहाँ महावीरों के क्षत–विक्षत शव टुकड़े–टुकड़े बिखरे पड़े थे, जहाँ टूटे हुए रथों के चक्र समय के टूटे हुए पहियों की भाँति निश्चेष्ट थे, जहाँ हवाओं में केवल महामृत्यु की विषैली गंध व्याप्त थी, उसी श्मशान बने रणभूमि के मध्य खड़ी थी गांधारी, वो अभागिनी माँ जिसने अपनी आँखों पर तो पट्टी बाँध ली थी, ताकि अपने पति के अंधकार को साझा कर सके। पर विधाता ने उसके भाग्य में ऐसा अंधकार लिख दिया था, जिसे कोई पट्टी नहीं ढक सकती थी, सौ पुत्रों के शव उनकी ममता के बीच लहूलुहान अस्त–व्यस्त बिखरे पड़े थे और उन शवों के बीच उन लक्ष से कुछ दूर शांत, अविचल और मुख पर एक रहस्यमयी मुस्कान लिए खड़े थे– द्वारकाधीश श्रीकृष्ण। तभी अपने पूरे जीवन की पीड़ा, अपने मातृत्व के हरेक आँसू को समेटकर काँपते हुए करुण होठों से गांधारी ने पूछा–(एक ऐसा प्रश्न जो इतिहास के हृदय को चीर गया) हे कृष्ण! हे मेरे सौ पुत्रों के हत्यारे, हे मेरे कुल का संपूर्ण विनाश करनेवाले! इतना बड़ा नरसंहार इन आँखों से देखकर इस महापाप को रचकर तुम्हें शांति कैसे मिल रही है? हे केशव! तुम्हारे मुख पर ये शांति, ये मुस्कान कैसे हैं?

एक बेबस माँ का ये प्रश्न किसी को भी अंदर तक हिला देगा। ये पूरे संसार का पूरी मानवता का ईश्वर से प्रश्न है कि हे प्रभु! इतने दुःख, इतनी पीड़ा के बीच तुम शांत कैसे रह सकते हो?

कुरुक्षेत्र की भूमि पर पसरा सन्नाटा किसी भी चीख से ज्यादा भयानक था। ये वो मौन था जो अठारह दिनों के अनवरत कोलाहल के बाद जन्मा था। एक ऐसा मौन जिसके गर्भ में लाखों विधवाओं का क्रंदन, अनाथों की सिसकियाँ और पुत्रहीन माताओं का हृदयविदारक विलाप, छिपा आकाश में मँडराते गिद्ध जैसे प्रतीज्ञा कर रहे थे कि कब अंतिम मनुष्य भी इस भूमि को त्याग दे और वे इस महाभोज में सम्मिलित हों। वायु में अनवरत् मांस और जलती देह चिताओं की गंध इस प्रकार व्याप्त थी, जैसे इस महाविनाश की साक्षी स्वयं प्रकृति भी अपने शोक नहीं रोक पा रही थी। इस कारुणिक दृश्य के बीच हस्तिनापुरी की राजरानी गांधारी अपने पति धृतराष्ट्र का हाथ थामे चल रही थी। उनकी आँखों पर बँधी पट्टी यही आज निरर्थक थी; क्योंकि जिस अंधकार को वो अपने भीतर महसूस कर रही थी, वो बाहरी अंधकार से कहीं अधिक घना, कहीं अधिक असहनीय था। हर पग पर उन्हें अपने पुत्र का क्षत–विक्षत शव मिलता और उसके मुख से हल्की कभी चीख निकल जाती। वो दुर्योधन को खोज रही थी, अपने ज्येष्ठ पुत्र को, उस पुत्र को जिसके मोह ने उसे अंधा बना दिया था, जिसके हठ के सामने उन्होंने भी घुटने टेक दिये थे और आज उसी हठ के परिणाम उसके सामने एक विशाल श्मशान के रूप में फैला पड़ा हुआ था। संजय जो अपनी पूरी हस्ति से इस दिव्य युद्ध के साक्षी बने थे। एक–एक शव की पहचान कराते जा रहे थे। हे राजमाते! ये देखिये, ये अपका पुत्र दुःशासन है, जिसकी छाती को भीम ने अपने हाथों से चीर दिया था। गांधारी काँप उठी, उसे वो दृश्य स्मरण हो आया, जब भरी सभा में वो द्रौपदी का चीरहरण कर रहा था और अट्टहास कर रहा था और अब उसका अट्टहास कहाँ गया? और ये विकर्ण है आपका वो पुत्र जिसने उस अधर्म का विरोध किया था। गांधारी के हृदय में एक हुक उठी–विकर्ण। जो धर्म के पथ पर थे, उसे भी इस युद्ध की अग्नि ने निगल लिया। एक–एक करके वे अपने सौ पुत्रों के बीच से गुजरती रही। हर शव के पास वो घुरती, उसके ठंडे माथे को छूती और उसके सूखे नेत्रों से जैसे रक्त टपकने लगता। उनका हृदय जैसे पत्थर–सा कठोर होता जा रहा था, ऐसा पत्थर जिस पर किसी और दुःख का कोई असर नहीं हो सकता था! और फिर एक सरोवर के निकट उन्हें दुर्योधन का शव मिला। जिसकी जंघा टूटी हुई थी, जिसका मुकुट धूल में सना हुआ था और जिसका वो चेहरा जिस पर सैदव अहंकार और दंभ का भाव रहता था, आज पीड़ा और पराजय से विकृत हो चुका था। अपने प्रिय पुत्र की वो दशा देखकर गांधारी का हृदय विदीर्ण हो गया, वो दहाड़ मारकर रो पड़ी। उनका विलाप इतना करुण था कि उसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाए। वो अपने पुत्र के शव से लिपट गयी और कहने लगी–मेरे लाल! मेरे दुर्योधन! उठो पुत्र! देखो, तुम्हारी माँ आयी है। तुम तो कहते थे–तुम चक्रवर्ती सम्राट बनोगे। तुम तो कहते थे–पांडव तुमसे भीख माँगेंगे, तुम स्वयं इस धूल में निष्प्राण क्यों लेटे हो, उठो पुत्र !! अपनी माँ से बात करो। पर उत्तर में केवल मृत्यु का ठंडा मौन था। गांधारी का मौन अब क्रोध में बदल रहा था, ऐसा क्रोध जो किसी ज्वालामुखी की तरह उसके भीतर धधक रहा था और उस क्रोध के अंदर थी, वो पाँच आकृतियाँ जो कुछ दूर खड़ी थीं। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव उनके साथ खड़े थे। वहीं शांत, सौम्य और किंचित् मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण। गांधारी अपने पुत्र के शव को देख उनके कदम लड़खड़ा रहे थे। पर उनकी आँखों में जो पट्टी के नीचे तेज छिपी थी, जैसे अंगारे दहक रहे थे। वो सीधे पांडवों के पास पहुँची। युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर कहा–माता! हम आपके अपराधी हैं। पर गांधारी ने उन्हें देखा तक नहीं। उनकी दृष्टि तो कृष्ण पर स्थिर थी। वो कृष्ण के सम्मुख जा, मुख से जो निकली, तो किसी श्राप से कम नहीं थे। उनकी आवाज में काँटों की चुभन थी–''कष्ण! तुम आज यहाँ क्या देखने आए हो?''

मेरे कुल का विनाश, मेरी कोख का उजड़ना, इस श्मशान को देखकर तुम्हें आनंद मिल रहा है? है न! कृष्ण शांत रहे, उनके मुख पर वही सौम्य भाव बना रहा। गांधारी का क्रोध और भड़क उठा। क्यों, तुम तो ईश्वर कहलाते हो, तुम सर्वशक्तिमान थे, तुम चाहते तो ये युद्ध रोक सकते थे। तुमने क्यों नहीं रोका? तुमने मेरे पुत्रों को क्यों नहीं बचाया? तुम तो खड़े–खड़े सब देखते रहे, जैसे कोई तमाशा देख रहा हो। तुमने पांडवों को उकसाया। तुम अर्जुन का सारथी बनकर युद्ध के लिए प्रेरित किया। तुमने भीम को मेरे पुत्र का जंघा तोड़ने के लिए प्रेरित किया। तुमने, केवल तुमने ये विनाश रचा है। उनके शब्द उनके आँसुओं में डूब रहे थे। तुमने मेरे पुत्रों को मारकर, इस धरती को रक्त से नहलाकर इन लाखों स्त्रियों को विधवा बनाकर तुम्हें शांति कैसे मिली? केशव! ये बताओ, तुम्हारा हृदय क्या पत्थर है, जो इस महाविनाश पर भी तुम्हें कोई पीड़ा नहीं हुई? तुम्हारे चेहरे से ये शांति कैसी है? ये मुस्कान कैसी है? बोलो कृष्ण! कृष्ण ने उत्तर दिया–नहीं, माते! विकर्ण अधर्मी नहीं था। उसका हृदय धर्म से पूर्ण था, परन्तु जब युद्ध का नगाड़ा बजता है, तो अग्नि ये नहीं देखती है कि कौन सूखा है और कौन गीला, वह सबको अपने चपेट में ले लेती है। विकर्ण ने अधर्म का विरोध अवश्य किया, लेकिन वो खड़ा अधर्म की सेना में ही हुआ। उसने अपने भाई का साथ देने का वचन निभाया और उस वचन ने ही इस विनाश का भागी बना दिया। ये कर्म का विधान है माते! यहाँ हर किसी को अपने कर्मों का,

अपने द्वारा चुने हुए पक्ष का परिणाम भोगना ही पड़ता है माते!

गांधारी ने पूछा–और तुम! तुम्हारा क्या कर्म था? तुम्हारा क्या पक्ष था। तुम तो शांतिदूत बनकर गये थे, फिर क्यों युद्ध होने दिया? कृष्ण के मुख पर एक गहरी मुस्कान उभरी–हाँ, माते! मैं शांतिदूत बनकर गया था। मैंने दुर्योधन के सामने हर प्रस्ताव रखा। मैंने पाँच गाँव माँगे, ताकि भाइयों में रक्तपात न हो, पर जब शासक का हठधर्म और अहंकार न्याय से बड़ा हो जाता है, तो विनाश निश्चित हो जाता है। मैंने युद्ध को नहीं चुना माते! युद्ध को आपके पुत्र दुर्योधन ने ही चुना था। मैंने तो केवल धर्म का पक्ष चुना और चाहा, ये मेरा धर्म था।

गांधारी के भीतर का क्रोध अभी भी शांत नहीं हुआ था। उन्होंने कहा–धर्म? किस धर्म की बात करते हो कृष्ण? क्या भीम का मेरे पुत्र की जंघा पर प्रहार करना धर्म था या धर्म के विरुद्ध था? क्या अर्जुन के निहत्थे कर्ण पर वार करना धर्म था? क्या धृष्टद्युम्न द्वारा मेरे गुरु द्रोणाचार्य का सिर काटना धर्म था? ये सब तो तुम्हारे ही इशारे पर हुआ कृष्ण! तुमने धर्म की नहीं, अधर्म की विजय करायी है।

ये सुनकर कृष्ण गंभीर हो गये। उन्होंने कहा–माते! आप केवल घटनाओं का मात्र एक पक्ष ही देख रही हैं। आप भूल गयीं दुर्योधन ने द्रोणी को अपनी जंघा पर बिठाने का अश्लील संकेत किया था और भीम ने उसी क्षण ये प्रतिज्ञा ली थी। ये भूल गई कि कर्ण ने ही अभिमन्यु के वध में प्रमुख भूमिका निभायी थी, जो स्वयं निहत्था और अकेला था। आप ये भूल गई कि द्रोणाचार्य ने ब्रह्मास्त्र का उपयोग करके लाखों निर्दोष सैनिकों का संहार किया था? धर्म की रक्षा के लिए अधर्म का मार्ग अपनाने वाले की हत्या करना पड़े तो वो अधर्म नहीं, परम धर्म कहलाता है माते!

विष का उपचार विष से ही करना पड़ता है। काँटे को काँटे से ही निकालना पड़ता है। कृष्ण के तर्क अकाट्य थे, पर एक माँ का हृदय तर्क से नहीं, भावना से चलता है। गांधारी के लिए उनके पुत्र थे, चाहे वे अधर्मी हों या पुण्यात्मा। उनका दुःख कम नहीं हो सकता था। उन्होंने अपनी आँखों पर बँधी पट्टी को छुआ और कहा–मैंने अपने पति के लिए जीवनभर ये अंधकार स्वीकार किया कृष्ण, पर आज मुझे ये ज्ञात हो रहा है कि असली अंधकार अंधापन के आँखों का नहीं, मोह का होता है। धृतराष्ट्र तो पुत्रमोह में अंधे थे और मैं भी उसी मोह में अंधी। मोहवश मैं अपने पुत्रों को कभी रोक नहीं पायी। शायद मैं भी इस विनाश के लिए उतनी ही दोषी हूँ, जितना कोई और! ये कहते–कहते उनका गला रुँध गया। इन लाशों की उतनी ही दोषी हूँ, जितना कोई और।

कृष्ण ने आगे बढ़कर उनके कंधे पर हाथ रखना चाहा, पर गांधारी पीछे हट गयी। उनके भीतर की सारी पीड़ा, सारा दुःख, सारा क्रोध अब एक विंदु पर केन्द्रित हो चुका था। उन्होंने अपनी दोनों हथेलियों को जोड़ा और आकाश की ओर मुख करके कहा–हे नारायण! यदि मैंने अपने पति के निःस्वार्थ भाव से सेवा की है, यदि मेरा पातिव्रत्य धर्म सत्य है, यदि मेरे तप में कोई बल है, तो मैं गांधारी हस्तिनापुर की राजमाता आज कृष्ण को श्राप दे रही हूँ। ये सुनकर पांडव काँप उठे। स्वयं व्यास और विदुर भी सहम गये, पर कृष्ण अविचल खड़े रहे। गांधारी ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर कहा–जिस प्रकार तुमने मेरे कुल का नाश मेरे ही आँखों के सामने करवाया है, उसी प्रकार आज से 36 वर्ष बाद तुम्हारा यदुवंश भी आपस में लड़कर नष्ट हो जाएगा। तुम्हारे पुत्र–पौत्र, भाई–बंधु सब एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो जाएँगे और तुम कृष्ण, तुम असहाय होकर अपने कुल का महाविनाश देखोगे, जैसे आज मैं देख रही हूँ और अंत में तुम एक साधारण शिकारी के हाथों एक पशु की भाँति मारे जाओगे और तुम्हारी द्वारिका नगरी समुद्र में विलीन हो जाएगी। ये एक पुत्रहीन माँ का श्राप है, ये कभी निष्फल नहीं होगा। श्राप देकर गांधारी धरती पर गिर गई, जैसे उनके शरीर का सारा बल समाप्त हो गया हो।

चारो ओर एक भयानक सन्नाटा छा गया। पांडव शांत, भयभीत थे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि जिस कृष्ण ने पग– पग पर उनकी रक्षा की, उसे आज ये दिन देखना पड़ रहा है। वे कृष्ण की ओर दौड़े, पर कृष्ण ने हाथ उठाकर उन्हें रोक दिया और फिर उन्होंने वो किया, जिसकी किसी ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। वे मुस्कराये, ऐसी मुस्कान जिसमें न दुःख था, न भय, केवल स्वीकृति थी। उन्होंने झुककर गांधारी को उठाया और कहा–उठिये, माते! मैं आपके श्राप को आशीर्वाद समझकर स्वीकार करता हूँ। ये सुनकर सब स्तब्ध रह गये। युधिष्ठिर ने कहा–ये आप क्या कह रहे हैं माधव! आप इस श्राप को रोक सकते हैं, आप सर्वशक्तिमान हैं। कृष्ण ने उत्तर दिया–नहीं, युधिष्ठिर! मैं इसे नहीं रोकूँगा, क्योंकि माता गांधारी ने वही कहा है—जो विधि का विधान है, जो होना है। यदुवंशी इस समय शक्ति और ऐश्वर्य के मद में चूर हो गये हैं। वे पथभ्रष्ट हो गये हैं और यदि उन्हें नहीं रोका गया, तो वे पूरी पृथ्वी के लिए भार बन जायेंगे। उनका विनाश निश्चित है और इसके लिए मुझसे अच्छा माध्यम कौन हो सकता है। माते! आपने तो मेरे मार्ग को सरल कर दिया। आपने तो मुझे उस दायित्व से मुक्त कर दिया, जो मुझे स्वयं ही हर हाल में पूरा करना थ।

कृष्ण के इन शब्दों को सुनकर गांधारी अवाक् रह गई। वो जिस व्यक्ति को अपने पुत्रों का हत्यारा समझ रही थी, वो तो स्वयं अपने कुल की आहूति देने को तत्पर था। वो जिस व्यक्ति को पीड़ा देना चाहती थी, वो तो उस पीड़ा को भी सहजता से स्वीकार कर रहा था। वो शांति, हार या जीत से नहीं जन्मी थी, वो शांति किसी को मारने या बचाने से नहीं आई थी, वो शांति आई थी धर्म के पथ पर अडिग रहने से। वो शांति आई थी–कर्म के विधान को समझने से। वो शांति आई थी–कर्ता होने के भाव से मुक्त होकर केवल निमित्त मात्र बनकर जीने से। कृष्ण दुखी या सुखी नहीं थे, क्योंकि वे कर्म के फल से परे थे। वे तो बस अपना कर्तव्य निभा रहे थे। चाहे वो कर्तव्य अर्जुन को गीता का उपदेश देना हो या अपने ही कुल के विनाश का सारथी बनना हो। उनके लिए दोनों ही एक समान थे, क्योंकि दोनों ही धर्म की संस्थापना के लिए आवश्यक थे।

गांधारी को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया था। कृष्ण को शांति इसलिए मिली, क्योंकि वो जानते थे कि इस विनाश में भी सृजन छिपा है–इस मृत्युलोक में भी जीवन का एक संदेश है और इस अंत में भी एक नये युग का आरंभ है। वे जानते थे कि व्यक्ति मरते हैं, कुल नष्ट होते हैं, साम्राज्य मिट जाते हैं, पर धर्म, धर्म शाश्वत है, सनातन है और उसी धर्म की स्थापना के लिए वे बार–बार आते हैं और हर पीड़ा को मुस्कुराकर सह जाते हैं।

गांधारी ने हाथ जोड़ लिये। इस बार घृणा से नहीं, बल्कि श्रद्धा से और इस बार उनके मुख से केवल इतना ही निकला कि हे पुरुषोत्तम! मैं आपको समझ न सकी। कृष्ण ने मुस्कुराकर उन्हें देखा और उस मुस्कान में एक माँ को अपने खोये हुए सौ पुत्रों का दुःख सहने की शक्ति मिल गई। उस मुस्कान में पूरी मानवता को अपने दुःखों से ऊपर उठने का मार्ग मिल गया।

कृष्ण ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा–माते! शांति किसी बाहरी परिस्थिति में नहीं, बल्कि मन की अवस्था में होती है। शांति का अर्थ सुख–सुविधाओं का भोग नहीं और न ही दुःखों का अभाव है। शांति का सच्चा अर्थ है–हर परिस्थिति में समभाव से स्थिर होना। सुख में अत्यधिक हर्षित न होना और दुःख में विचलित न होना और ये संभव तब होता है, जब मनुष्य ये समझ लेता है कि वो इस संसार में एक यात्री मात्र है। एक अभिनेता मात्र है, जिसे अपनी भूमिका निभानी है और फिर मंच से विदा ले लेनी है। उन्होंने रणभूमि में बिखरे शवों की ओर संकेत करते हुए कहा–देखिये, माते! ये जो वीर यहाँ मृत पड़े हैं, क्या ये यहाँ सदा के लिए रहने आये थे, नहीं। ये सब अपनी–अपनी भूमिका निभाने आये थे। किसी ने धर्म की भूमिका निभाई,

किसी ने अधर्म की, पर अंत में सबको एक दिन जाना ही था। मृत्यु तो वस्त्र बदलने जैसी है। आत्मा तो अजर अमर अविनाशी है, उसे न तो शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल गला सकता है और न वायु सूखा सकती है। आपके पुत्रों का केवल देह का अंत हुआ है। माते! आत्मा अपनी यात्रा पर निकल चुकी है। तो फिर शोक कैसा!

गांधारी ने कहा–ये ज्ञान की बातें हैं कृष्ण! एक माँ का हृदय, ये ज्ञान नहीं समझता। वो तो अपनी संतान का वियोग समझता है। कृष्ण ने अत्यन्त प्रेम से कहा–मैं समझता हूँ माते! इसलिए तो मैं ये कहता हूँ–शांति का मार्ग ज्ञान से नहीं, समर्पण से मिलता है। जब आप ये स्वीकार कर लेती हैं कि जो हो रहा है, वह उस परम शक्ति की इच्छा से ही हो रहा है और उस इच्छा में ही सबका कल्याण निहित है, तब हृदय में शान्ति अपने आप उतर आती है। मैंने इस युद्ध को अपनी इच्छा से नहीं रचा। मैंने तो केवल उस परम विधान को पूर्ण होने में सहायता की है। मैं तो केवल एक निमित्त मात्र हूँ, एक माध्यम और जब कर्म होने का अहंकार समाप्त हो जाता है, तो कर्म का कोई बंधन नहीं रहता और जब कर्म का बंधन नहीं, तो दु:ख कैसा, पीड़ा कैसी?

कृष्ण की वाणी में एक सम्मोहन था, एक दिव्यता थी, जो गांधारी के संतप्त हृदय पर एक शीतल लेप का काम कर रही थी। पहली बार ये अनुभव हुआ गांधारी को कि उनके पुत्रों की मृत्यु का कारण केवल पांडव या कृष्ण नहीं, बल्कि उनके दंभ, अहंकार, अधर्म, उनके स्वयं के कर्म की राय थी। कृष्ण ने तो केवल अधर्म के फल को गति प्रदान की थी, जो उन्हें मिलना ही था। उन्होंने ये भी समझा कि कृष्ण की शांति उनकी गहरी संवेदना थी हीनता का प्रतीक नहीं, बल्कि उनकी गहरी समझ का प्रतीक है जो घटना में छिपे हुए ईश्वरीय विधान की क्षमता देती है। वो समझ चुकी थी कि कृष्ण के लिए न कोई अपना है, न कोई पराया। न कोई मित्र है, न कोई शत्रु। वे तो बस धर्म के साथ खड़े हैं और जो भी धर्म के साथ हैं, वे उनके साथ हैं।

गांधारी को अब अपने श्राप पर ग्लानि हो रही थी। उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति को श्राप दे दिया था जो स्वयं उस श्राप को अपने कर्तव्य का हिस्सा मानना स्वीकार कर रहा था। उन्होंने कृष्ण से क्षमा माँगनी चाही; परन्तु कृष्ण ने उन्हें रोक दिया—नहीं माते! क्षमा माँगकर मुझे लज्जित न करे। आपने एक माँ का धर्म निभाया है और मैंने धर्म संस्थापक का। इनमें कुछ भी अनुचित नहीं है।

कृष्ण ने युधिष्ठिर की ओर मुड़कर कहा–अब विलाप का समय समाप्त हुआ। अब इनकी आत्मा की शांति के लिए इनका अंतिम संस्कार विधि–विधान से करो और हस्तिनापुर जाकर राजधर्म का पालन करो। यही तुम्हारा कर्तव्य है।

उस दिन कुरुक्षेत्र की भूमि पर जहाँ कुछ समय पहले तक शस्त्रों की झंकार और वीरों की हुंकार गूंज रही थी, उनका एक साथ संस्कार किया और गांधारी दूर खड़ी ये सब देखती रही, उनके हृदय में अब क्रोध या घृणा नहीं, बल्कि एक अजीब– सी शांति थी, एक वैराग्य का भाव था। उन्होंने जीवन का सबसे बड़ा सत्य जान लिया था कि इस संसार में कुछ भी हमारा नहीं है– न पुत्र, न पति, न राज्य–सब कुछ एक दिन छूट जाता है, रह जाता है केवल हमारा कर्म और उस परमपिता परमात्मा का नाम। उन्होंने अपने पति धृतराष्ट्र का हाथ थामा और वन की ओर प्रस्थान करने का निर्णय ले लिया, ताकि जीवन ईश्वर के चिंतन में बिता सकें। कृष्ण ने उन्हें जाते हुए देखा। उनके मुख पर वही चिर परिचित रहस्यमयी मुस्कान थी, एक ऐसी मुस्कान जो कह रही थी–ये अंत नहीं, एक नये अध्याय का आरंभ है।

यह कहानी सिरजती है कि जीवन में दु:ख और कठिनाइयाँ तो आयेंगी ही, पर उनका सामना कैसे करते हैं, ये हम पर निर्भर करता है। हम गांधारी की तरह अपना जीवन या तो क्रोध या विलाप में अपना जीवन नष्ट कर सकते हैं या फिर कृष्ण की तरह हर परिस्थिति में समभाव से स्वीकार करके अपने कर्तव्य पथ पर अडिग रहकर शांति और आनंद को प्राप्त कर सकते हैं। चुनाव हमारा है। सच्ची शांति समर्पण और कर्तव्यपालन में ही है।

(भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं गीता में कहा है–'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्' अर्थात् महीने में मार्गशीर्ष हूँ मैं। हिन्दू पंचांग का नौवाँ महीना अगहन मार्गशीर्ष है। यह नवम्बर–दिसम्बर माह के मध्य का समय है, जो सभी मांगलिक कार्यों के लिए शुभ माना गया है। महाभारत युद्ध नवम्बर–दिसम्बर माह के बीच हुआ था।)

कविता

मेरे आँगन के फूल

मिथिलेश आदित्य
बजरंगवली मंदिर परिसररानीगंज, मेरीगंज,
अररिया–854334, मो.–9973536489

मेरे आँगन के फूल किसी नर्सरी से नहीं आए–
वे उगे हैं मेरी बेटी की हथेलियों की धूप में
उसकी अनकही थकान
और रोज–रोज सींची गई उम्मीदों की मिट्टी में

इन फूलों ने
कभी माली से बोलना नहीं सीखा–
इन्होंने सीखा है
चुप रहकर बड़ा होना
और समय से पहले झर जाना

सुबह की पहली किरण
जब इनके माथे को छूती है
तो आँगन
मंदिर–सा पवित्र हो जाता है–
जहाँ कोई घंटी नहीं बजती
पर श्रम की प्रार्थना
स्वत: पूरी हो जाती है

ये फूल
कभी बाज़ार की सज़ावट नहीं बने
इन पर दाम नहीं लगे
फिर भी हर पर्व, हर संकट
हर घर की थाली में
इनकी खुशबू
सबसे पहले पहुँचती है

ये फूल जानते हैं–
दुनिया उन्हें नाम से नहीं
ज़रूरत से पहचानेगी
फिर भी
वे चुपचाप
अपना रंग
समाज की धूल में घोल देते हैं

मेरे आँगन के फूल
मुझे रोज़ याद दिलाते हैं–
सुंदर वही है
जो शोर नहीं करता
जो मंच नहीं माँगता
और फिर भी
अपना कर्तव्य
पूरी ईमानदारी से निभा जाते हैं

सच्ची पवित्रता
खुद को विशाल समझने में नहीं
बल्कि
रोज–रोज सींची गई

घुमक्कड़ी

देश–ज्ञान

राहुल सांकृत्यायन

आज जिस प्रकार के घुमक्कड़ों की दुनिया को आवश्यकता है, उन्हें अपनी यात्रा केवल 'स्वान्तः सुखाय' नहीं करनी है। उन्हें हरेक चीज इस दृष्टि से देखनी है, जिसमें कि घर बैठे रहने वाले दूसरे लाखों व्यक्तियों की वह आँख बन सके। इसीलिए घुमक्कड़ को अपनी यात्रा के आरंभ करने से पहले उस देश के बारे में कितनी ही बातों की जानकारी प्राप्त कर लेनी आवश्यक है। सबसे पहले जरूरी है–रास्ता और देश के ज्ञान के लिए नक्शे का अध्ययन। पुराने युग के घुमक्कड़ों के लिए यह बड़ी कठिन बात थी। उस वक्त नक्शे जो थे भी, वे अंदाजी हुआ करते थे। यद्यपि मोटी–मोटी बातों और दिशाओं का ज्ञान हो जाता था, किंतु देश का कितना थोड़ा ज्ञान तो होता था, यह तालमी या दूसरे पुराने नक्शाकारों के मानचित्रों को देखने से मालूम हो जाएगा। उस नक्शे का आज के देश से संबंध जोड़ना मुश्किल था। ईसवी सदी के बाद जब रोमन, भारतीय और अरब ज्योतिषियों में भिन्न–भिन्न नगरों के अक्षांश और देशांतर बेध द्वारा मालूम किए, तो भौगोलिक जानकारी के लिए अधिक सुभीता हो गया, तो भी अच्छे नक्शे 18वीं सदी से ही बनने लगे। आज तो नक्शा–निर्माण एक उच्च कला और एक समृद्ध विज्ञान है। किसी देश में यात्रा करने वाले घुमक्कड़ के लिए नक्शे का देखना ही नहीं, बल्कि उसके मोटे–मोटे
स्थानों को हृदयस्थ कर लेना आवश्यक है। जिन नगरों और स्थानों में जाना है, वहाँ की भूमि–पहाड़ी, मैदानी या बालुकामयी है–इन बातों का ज्ञान होना चाहिए। पहाड़ी भूमि की कम–से–कम
और अधिक–से–अधिक कितनी ऊँचाई है, यह भी मालूम होना चाहिए। अक्षांश और उन्नतांश (भूमि की ऊँचाई) के अनुसार सर्दी बढ़ती घटती है। ऋतुओं का परिवर्तन सुमात्रा के बीच से जाने वाली भूमध्य रेखा के उत्तर और दक्षिण में उल्टा होता है। जावा और बालो की ओर जाने वाले घुमक्कड़ों का इसकी ओर ध्यान होना आवश्यक है।

हमारे यहाँ यह तो कथा थी कि देवों के देश में छह महीने का दिन और छह महीने की रात होती है, लेकिन भौगोलिक तथ्य के तौर पर इसका ज्ञान आधुनिक काल में ही हुआ। रात्रि और दिन का इतना विस्तार हो जाना कि वह एक–दूसरे की जगह ले लें, इसका पता काफी पहले से हो चुका था। 1395 ई. में तैमूर रूस के मंगोल शासकों पर चढ़ाई करते हुए मॉस्को तक गया। उसकी सेना उत्तर में बढ़ते–बढ़ते बहुत दूर गई, जहाँ रात्रि नाममात्र की रह गई। तैमूर के सौभाग्य से रोजे का दिन नहीं था, नहीं तो या तो धर्म छोड़ना होता या प्राण देना पड़ता। तो भी यह समस्या थी कि 20 घंटे के दिन में पाँचों नमाजों को कैसे बाँटा जाए। तैमूर ने तीन साल बाद 1398 ई. में दिल्ली भी लूटी, लेकिन शायद उस वक्त के दिल्ली वालों की तैमूर के सिपाहियों की इस बात पर विश्वास नहीं होता। बहुत दूर उत्तरी ध्रुव में छह महीने का दिन और छह महीने की रात होती है। मैंने लेनिनग्राद में भी देखा कि गरमियों के प्रायः तीन महीने, जिसमें जुलाई–अगस्त भी शामिल हैं, रात्रि होती ही नहीं। दस बजे सूर्यास्त हुआ. दो घंटा गोधूलि ने लिया और अगले दो घंटों को उषा ने। इस प्रकार रात बेचारी के लिए अवकाश ही नहीं रह जाता और आधी रात को भी आप घर से बाहर बिना चिराग के अखबार पढ़ सकते हैं।

इन भौगोलिक विचित्रताओं का थोड़ा–बहुत ज्ञान घुमक्कड़ को अपनी प्रथम यात्रा से पहले होना चाहिए। जब वह किसी खास देश में विचरने जा रहा हो, तो उसके बारे में बड़े नक्शे को लेकर सभी चीजों का भलीभाँति अध्ययन करना चाहिए। तिब्बत और भारत के बीच में उत्तुंग हिमालय की पर्वतमालाएँ हैं, लेकिन वह कभी मनुष्य के लिए दुर्लंघ्य नहीं रहीं। कश्मीर से लेकर आसाम तक कई सौ ऐसे पर्वत कंठ हैं, जिनसे पर्वत पृष्ठों को पार किया जा सकता है। हाँ, रास्ते सभी सुगम नहीं हैं, न सभी रास्तों में बस्तियाँ आसानी से मिलती हैं, इसलिए अपरिचित व्यक्ति को ऐसे ही डाँड़ों को पकड़ना पड़ता है, जिनसे प्रधान रास्ते जाते हैं। जहाँ राज्य की तरफ से दिक्कतें हैं, वहाँ वेष बदलकर रास्तों को पार किया जा सकता है अथवा अप्रचलित रास्तों को स्वीकार करना पड़ता है।

नक्शे को देखकर आसाम, भूटान, सिक्किम, नेपाल, कुमायूँ, टिहरी, बुशहर, काँगड़ा और कश्मीर से तिब्बत की ओर जानेवाले रास्तों, उनकी बस्तियों तथा भिन्न–भिन्न स्थानों की पहाड़ी ऊँचाइयों को जिसने देख लिया है, उसके लिए कितनी ही बातें साफ हो जाती हैं। एक डाँडा पार कर लेने पर तो दूसरे रास्ते की जानकारी स्वयं ही बहुत–सी हो जाती है। जिसमें घुमक्कड़ी का अंकुर निहित है, उसे दो–चार मर्तबा देखा, नक्शा आँख मूँदने पर भी दिखलाई पड़ता है। कम–से–कम नक्शे के साथ उसका अत्यधिक प्रेम तो होता ही है। यह स्मरण रखना चाहिए कि छिपकर की गई यात्राओं में अक्सर नक्शों को पास रखना ठीक नहीं होता, कभी–कभी तो उसका कारण विदेशी गुप्तचर माना जाने लगता है, इसलिए घुमक्कड़ यदि नक्शे को दिमाग में बैठा ले, तो अच्छा है। कभी–कभी सुपरिचित–सी साधारण पुस्तक के छपे नक्शे से भी काम लिया जा सकता है। नक्शा ही नहीं, बाज वक्त तो पुस्तक को भी छोड़ देना पड़ता है। प्रथम तिब्बत–यात्रा में से पहले किस अंग्रेजी पुस्तक से मैंने तिब्बती भाषा का अध्ययन किया था, उसे एक स्थान पर छोड़ देना पड़ा और नक्शों को नदी में बहाना पड़ा।

नक्शों के उपयोग के साथ–साथ थोड़ा–बहुत नक्शा बनाने का अभ्यास हो तो अच्छा है। दूसरे नक्शे से काम की चीजें
उतार लेना तो अवश्य आना चाहिए। जो घुमक्कड़ भूगोल के संबंध में विशेष परिश्रम कर चुका है और जिसे अल्पपरिचित से स्थानों में जाना है, उसको उक्त स्थान के नक्शे के शुद्ध–अशुद्ध होने की जाँच करनी चाहिए। तिब्बत ही नहीं, आसाम में उत्तरी कोण पर भी कुछ ऐसे स्थान हैं, जिनका प्रामाणिक नक्शा नहीं बन पाया है। नक्शों के बिंदु जोड़कर बनाई नदियाँ दिखाई गई होती हैं, जिसका अर्थ यही है कि वहाँ के लिए अभी नक्शा बनाने वाले अपने ज्ञान को निर्विवाद नहीं समझते। आज के घुमक्कड़ का एक कर्तव्य ऐसी विवादास्पद जगहों के बारे में निर्विवाद तथ्य का निकालना भी है। ऐसा भी होता है कि घुमक्कड़ पहले से किसी बात के लिए तैयार नहीं रहता, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर वह उसे सीख लेता है। आवश्यकताओं ने ही बलात्कार करके मुझे कितनी ही चीजें सिखलाई। मेरे घुमक्कड़ मित्र मानसरोवर–वासी स्वामी प्रणवानंदजी को आवश्यकता ही ने योगी परिव्राजक से भूगोलज्ञ बना दिया और उन्होंने मानसरोवर प्रदेश के संबंध में कुछ निर्भ्रांत समझी जानेवाली भ्रांत धारणाओं का संशोधन किया। हम नहीं कहते हरेक घुमक्कड़ को सर्वज्ञ होना चाहिए, किंतु घुमक्कड़ी–पथ पर पैर रखते हुए कुछ–कुछ ज्ञान तो बहुत–सी बातों का होना जरूरी है।

सभी देशों के अच्छे नक्शे न मिल सकें और सभी देशों के संबंध में परिचय–ग्रंथ भी अपनी परिचित भाषा में शायद न मिलें, किंतु जो भी साहित्य उपलब्ध हो सके, उसे देश के भीतर घुसने से पहले पढ़ना बहुत लाभदायक होता है। इससे आदमी का दृष्टिकोण विशाल हो जाता है। सभी तो नहीं, लेकिन बहुत से धुँधले स्थान भी प्रकाश में आ जाते हैं। अपने पूर्वज घुमक्कड़ों के परिश्रम के बल से लाभ उठाना हरेक घुमक्कड़ का कर्तव्य है।

घुमक्कड़ के उपयोग की पुस्तकें केवल अंग्रेजी में ही नहीं हैं, जर्मन रूसी और फ्रेंच में भी ऐसी बहुत–सी पुस्तकें हैं। हमारी हिंदी तो देश की परतंत्रता के कारण अभी तक अनाथ थी, किंतु अब हमारा कर्तव्य है कि हिन्दी में इस तरह के साहित्य का निर्माण करें। हमारे देशीभाई व्यापार के सिलसिले में दुनिया के कौन से छोर में नहीं पहुँचे हैं? एशिया और यूरोप का कोई स्थान नहीं, जहाँ पर वे न हों। उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका के राज्यों में कितनी ही जगहों में हजारों की तादाद में बस गए, जिसके हाथ में लेखनी है और जिनकी आँखों ने देखा है, इन दोनों के संयोग से बहुत–सी लोकप्रिय पुस्तकें तैयार की जा सकती हैं। अभी तक अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, चीनी में जो पुस्तकें भिन्न–भिन्न देशों के बारे में लिखी गई हैं, उनका अनुवाद तो होना ही चाहिए। अरब–पर्यटकों ने आठवीं से चौदहवीं पंद्रहवीं सदी तक दुनिया के देशों के संबंध में बहुत भौगोलिक ग्रंथ लिखे। पश्चिमी भाषाओं में विशेष ग्रंथमाला निकाल इन ग्रंथों का अनुवाद कराया गया। हमारे घुमक्कड़ों को पर्यटन में पूरी सहायता के लिए यह आवश्यक है कि आदिम काल से लेकर आज तक भूगोल के जितने महत्त्वपूर्ण ग्रंथ किसी भाषा में लिखे गए हैं, उनका हिंदी में अनुवाद कर दिया जाए। ऐसे ग्रंथों की संख्या दो हजार से कम न होगी। हमें आशा है, अगले दस–पंद्रह सालों में इस दिशा में पूरा कार्य हो जाएगा, तब तक के लिए हमारे आज के कितने ही घुमक्कड़ अंग्रेजी से अनभिज्ञ नहीं होंगे।

भूगोल–संबंधी ज्ञान के अतिरिक्त हमें गंतव्य देश के लोगों के बारे में भी पहले से जितनी बातें मालूम हो सकें, जान लेनी चाहिए। भूमि के बाद जो बात सबसे पहले जानने की है, वह है वहाँ के लोगों के वंश का परिचय। तिब्बत, मंगोलिया, चीन, जापान, बर्मा आदि के लोगों की आँखों और चेहरे को देखते ही हमें मालूम हो जाता है कि वह एक विशेष जाति के हैं, लेकिन ऐसी आँखें नेपाल में भी मिलती हैं। छोटी नाक गाल की उठी हड्डी, कुछ अर्धमुंदी–सी आँखें तथा जरा–सी ऊपर की ओर तनी भौंह–ये मंगोल वंश के चिह्न हैं। इसी तरह मानव वंशशास्त्र द्वारा हमें नीग्रा, द्रविड़, हिंदी, यूरोपीय तथा भिन्न–भिन्न मिश्रित वंशों के संबंध की बहुत–सी बातें मालूम हो जाएँगी। यह आँख, हड्डी, नाक तथा खोपड़ी की बनावट का ज्ञान आगे फिर उस देश के लोगों का इतिहास जानने में सहायक होगा। स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य जंगम प्राणी है, वह बराबर घूमता रहा है। मनुष्य–मनुष्य का सम्मिश्रण खूब हुआ है। आज के दिनों मध्य एशिया और अल्ताई के पश्चिम के भाग में आज मंगोलीय जाति का निवास दिखाई पड़ता है, किंतु 2100 वर्ष पहले वहाँ उनका पता नहीं था। उस समय वहाँ के लोग निवास करते थे, जिनके भाई–बंधु भारत–ईरान में आर्य और वोल्गा से पश्चिम में शक कहे जाते थे। इसी तरह लद्दाख के लोग आजकल तिब्बती बोलते हैं, ईसा की सातवीं सदी के पहले वहाँ मंगोल–भिन्न जाति रहती थी, जिसे खुश–दरद कहते थे। नृवंश का थोड़ा–बहुत परिचय गंतव्य देश की यात्रा को अधिक सुगम बना देता है।

गंतव्य देश की भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके घुमक्कड़ को उस देश में जाना चाहिए, यह नियम अनावश्यक है। यदि घुमक्कड़ को आवश्यकता हुई और अधिक समय तक रहना पड़ा, तो वह अपने आप भाषा को सीख लेगा। जहाँ जो भाषा बोली जाती है, वहाँ जाकर उसे सीखना दसगुना आसान है। जिन भाषाओं को लिखने की वर्णमालाएँ हैं, उनका लिखना–पढ़ना आसान है, लेकिन चीनी और जापानों की बात दूसरी है। उनकी लिखित भाषा को सीखना बहुत कम घुमक्कड़ों के वश की बात है, किंतु चीनी–जापानी भाषा बोलना मुश्किल नहीं है–चीनी तो और भी आसान है। भाषा सीखकर न जानने पर भी घुमक्कड़ को गंतव्य देश की भाषा का थोड़ा परिचय तो अवश्य होना चाहिए। अति प्रयुक्त दो सौ शब्द यदि सीख लिए जाएँ, तो उनसे यात्रा में बड़ी सहायता होगी। कम–से–कम दो सौ शब्द तो अवश्य ही सीखकर जाना चाहिए। कुछ देशों की भाषाओं के शब्द हमें पुस्तकों से मालूम हो सकते हैं। हिंदी में तो अभी इस तरफ काम ही नहीं हुआ है। यदि भारत फिर प्राचीन काल की तरह प्रथम श्रेणी घुमक्कड़ों को पैदा करना चाहता है, तो यह आवश्यक है कि हिंदी में प्रत्येक देश के सौ डेढ़ सौ पृष्ठ के परिचय–ग्रंथ लिखे जाएँ, जिनमें नक्शे के साथ दो–चार सौ शब्द भी हों।

नए देश में जो बातें सबसे पहले हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं, उनके बारे में हम कह चुके हैं, लेकिन देश के ज्ञान के लिए आँखों से देखी जाने वाली बातें ही पर्याप्त नहीं हैं। हरेक देश और समाज सदियों, सहस्राब्दियों के विकास का परिणाम है। इसलिए वहीं के इतिहास के बारे में भी कुछ ज्ञान होना चाहिए। यदि वह ऐसा देश है, जहाँ की प्रचलित या धार्मिक भाषा का घुमक्कड़ को परिचय है, तो उसे वहाँ के इतिहास और ऐतिहासिक सामग्री को विशेष ध्यान से देखना होगा। सुमात्रा, जावा, बाली, मलाया, बर्मा, स्याम और कंबोज में जाने वाले भारतीय घुमक्कड़ों को तो इस तरफ अधिक ध्यान देना बहुत आवश्यक है। इन देशों के लोग भारतीय घुमक्कड़ से इस विषय में कुछ अधिक आशा रखेंगे। वे देश भारतीय संस्कृति के विस्तार क्षेत्र हैं, इसलिए वहाँ के लोग अपनी संस्कृति का भारत को उद्‌गम–स्थान मानते हैं, अतः भारतीय से कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहेंगे। जिस ज्ञान की कमी को किसी यूरोपीय यात्री में पाकर वह कोई संतोष या आश्चर्य नहीं प्रकट करेंगे, उसी कमी को भारतीय घुमक्कड़ में देखकर उन्हें आश्चर्य और ग्लानि भी हो सकती है। इसलिए हमारे घुमक्कड़ को पहले ही से आवश्यक हथियारों से लैस होकर जाना चाहिए।

इतिहास के निर्माण में लिखित सामग्री का भी उपयोग होता है। प्रत्येक सभ्य देश में कितने ही पूर्ण–अपूर्ण इतिहास ग्रंथ पुराने काल से लिखे जाते रहे हैं। ऐसे ग्रंथों का महत्त्व कम नहीं है,
किंतु इतिहास की सबसे ठोस प्राकृतिक सामग्री समकालीन अभिलेख और सिक्के होते हैं। वैसे ईंटें और मूर्तियाँ भी महत्त्व रखती हैं, किंतु वह काल के बारे में शताब्दी के भीतर का निश्चय नहीं कर सकतीं, जबकि अभिलेख, सिक्के अपनी बदली लिपि के कारण समय का संकेत स्पष्ट कर देते हैं, चाहे उनमें सन् संवत् न भी लिखा हो। बृहत्तर भारत के देशों में वहीं लिपि प्रचलित थी, जो उस समय हमारे देश में चलती थी। जिनको पुरा–लिपि से प्रेम है, उन्हें तो बृहत्तर भारत में जाते समय पुरा–लिपि का थोड़ा ज्ञान कर लेना चाहिए और यदि ब्राह्मी लिपि से जितनी लिपियाँ निकली हैं, उनका चार्ट पास में मौजूद हो तो अच्छा है। यह ज्ञान सिर्फ अपने संतोष और जिज्ञासा पूर्ति के लिए सहायक नहीं होगा, बल्कि इसके कारण यहाँ के लोगों के साथ हमारे घुमक्कड़ की बहुत आसानी से आत्मीयता हो जाएगी।

वास्तु–निर्माण और उसकी ईंट–पत्थर की सामग्री इतिहास के ज्ञान में सहायक होती है। बृहत्तर भारत में ईसा की प्रथम शताब्दी से 11वीं शताब्दी तक भारत के भिन्न–भिन्न स्थानों से धर्मोपदेशक, व्यापारी और राजवांशिक जाते रहे तथा उन्होंने वहाँ की वास्तुकला के विकास में भारी भाग लिया था। वास्तुकला का साधारण परिचय तुलना करने के लिए अपेक्षित होगा। बृहत्तर भारत में जिन लोगों ने पुरातत्त्व या वास्तुकला के संबंध में अनुसंधान किया है, उनको हमारे देश का उतना ज्ञान नहीं रहा है कि वह सब चीजों की गहराई में उतर सकें, यह हमारे घुमक्कड़ को ध्यान में रखना चाहिए। किसी भी बौद्ध देश में जानेवाले भारतीय घुमक्कड़
के लिए आवश्यक है कि वह जाने से पूर्व भारत, बृहत्तर भारत तथा बौद्ध साहित्य के इतिहास का साधारण परिचय कर ले और बौद्धधर्म की

मोटी–मोटी बातों को समझ ले। कितने ही हमारे भाई उत्साह के साथ बौद्ध देशों में जा बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा–जो सचमुच बनावटी नहीं होती दिखलाते हुए ईश्वर, परमात्मा, यज्ञ– हवन की बातें कर डालते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि इन विवादास्पद बातों के विरुद्ध बातों में बौद्धों की ओर से बहुत–से प्रौढ़ ग्रंथ लिखे गए, जिनमें से कितने ही बौद्ध देशों में अनुवादित हो मौजूद रहे हैं, बल्कि अब भी वहाँ के विद्वान् उन्हें पढ़ते हैं। तिब्बत का थोड़ा– सा भी अपने शास्त्र को पढ़ा हुआ विद्वान् धर्मकीर्ति के इस श्लोक को जानता है–

वेद प्रामाण्यं कस्यचित् कर्तृवादः
स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः।
संतापारम्भः पापहानाय चेति
ध्वस्तप्रज्ञानां पंच लिङ्गानि जाड्ये।

किसी विद्वान् के सामने यदि कोई भारतीय घुमक्कड़ अपने को बुद्ध–प्रशंसक ही नहीं, बौद्ध कहते हुए इन पाँचों बेवकूफियों में से किसी एक का समर्थन करने लगे, तो वहाँ का विद्वान् अवश्य मुस्कुरा देगा। बहुत–से हमारे भाई अपनी मनगढ़ंत धारणा के कारण समझ बैठते हैं कि बौद्ध भ्रम में हैं और उनकी अपनी धारणाएँ सही हैं, लेकिन उनको स्मरण रखना चाहिए कि बुद्ध की शिक्षा क्या थी, इसकी जानकारी के सारे साधन बौद्ध के पास हैं, इसकी सारी परंपराएँ उनके पास हैं और बौद्धधर्म को उन्होंने जीवित रखा। हमारे यहाँ जब बौद्धधर्म के दस–बीस ग्रंथ भी नहीं
बच रहे, उस समय भी चीन और तिब्बत ने हमारे यहाँ से विलुप्त आठ–दस हजार ग्रंथों को अनुवाद रूप में सुरक्षित रखा। इसलिए अपने अधिकार और विचार के रोब जमाने का ख्याल छोड़कर यदि घुमक्कड़ थोड़ा–सा बौद्ध धर्म के बारे में जान लेने की कोशिश करे, तो उपहासास्पद गलतियाँ करने से बच जाएगा, चाहे पीछे यह बौद्ध दर्शन का खंडन भी करे।

हरेक गंतव्य देश के संबंध में तैयारी भी अलग–अलग तरह की होगी। यह आवश्यक नहीं है कि एक–एक देश को देखकर घुमक्कड़ फिर भारत लौटकर तैयारी करे। जिसने यहाँ रहकर 20–21 वर्ष तक आवश्यक शिक्षा समाप्त कर ली और कॉलेज के पाठ्यक्रम तथा बाहर से घुमक्कड़ से संबंध रखनेवाले विषयों की पुस्तकों को पढ़ लिया है, यदि वह छः साल लगा दें, तो सिंहत, बर्मा, स्याम, मलाया, सुमात्रा, जावा, बाली, कंबोज, चंपा, तोड्किन, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, चीनी– तुर्किस्तान और तिब्बत की यात्रा एक बार में पूर्ण कर भारत लौट आ सकता है और इतनी बड़ी यात्रा के फलस्वरूप हमारे देश को ज्ञानपूर्ण ग्रंथ भी दे सकता है।

उपर्युक्त देशों में जिन साधनों की आवश्यकता है, वही साधन सभी देशों में काम नहीं आ सकते। रूस और पूर्वी यूरोप की जानकारी के साधनों का संचय तो होना ही चाहिए, साथ ही यदि घुमक्कड़ संस्कृत के भाषा–तत्त्व का ज्ञान रखता है, तो स्लाव–भाषाओं के महत्त्व को ही नहीं समझ सकता, बल्कि स्लाव जातियों के साथ आत्मीयता का भाव भी पैदा कर सकता है। किसी जाति का इतिहास जानने से ही आदमी उस जाति को समझ सकता है। जातियों के प्राग्–ऐतिहासिक ज्ञान के लिए भाषा बड़ा महत्त्व रखती है।

इस्लामी देशों में घुमक्कड़ी करने वाले तरुणों को इस्लाम के धर्म और इतिहास का परिचय होना चाहिए। साथ ही जहाँ अधिक रहना हो, वहाँ की भाषा का भी परिज्ञान होना जरूरी है। पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया की मुस्लिम जातियों के साथ अधिक सुभीते से परिचय करने के लिए केवल तीन भाषाओं की आवश्यकता होगी–तुर्की, फारसी और अरबी। संस्कृत जानने वाले के लिए भाषा तत्त्व की कुंजी के साथ फारसी बहुत सुगम हो जाती है।

भाषा तत्त्व, पुरातत्त्व आदि बातों पर ध्यान आकृष्ट करने का यह अर्थ नहीं कि जब तक व्यक्ति इन विषयों पर अधिकार प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक का घुमक्कड़ बनने का अधिकारी नहीं। घुमक्कड़–शास्त्र सभी रुचि और क्षमता वाले भावी घुमक्कड़ों के लिए लिखा गया है, इसलिए इसमें अधिक–से–अधिक बातों का समावेश है, जिसका यह अर्थ नहीं है कि आदि से इति तक सभी चीजें हरेक को जानकर ही घर से पैर निकालना चाहिए।

ग़ज़लें

केशव शरण
सिकरौल, वाराणसी
9580619244

1
भले घर न होकर विराना हुआ
ठिकाना नहीं था ठिकाना हुआ
बना दोस्त आला अकेला किया
किसी का नहीं ये ज़माना हुआ
हुआ कुछ न सोचा हुआ अंत में
अलग एकदम से फ़साना हुआ
सभी तीर नाकाम सबके रहे
नयन–बाण का मैं निशाना हुआ
सभी ओर मेरी बग़ावत रही
यहाँ तक कि मैं आशिकाना हुआ
रुलाकर मुझे जो गया था कभी
मिला तो मुझे मुस्कुराना हुआ
रहे फिर हमेशा बने अजनबी
दुबारा नहीं दोस्ताना हुआ
चलो आ गया जुल्म सहना हमें
जहाँ अब बहुत ज़ालिमाना हुआ।

2.
ला रहे हैं मगर नहीं आती
ज़िंदगी राह पर नहीं आती
स्याह से स्याह रात कट जाए
पर चमकती सहर नहीं आती
क्या करें हम तमाम ख़बरों का
इक़ ख़ुशी की ख़बर नहीं आती
बुलबुलें तो बहुत उठा करते
पर नदी में लहर नहीं आती
काम करता हुआ चला जाता
कामयाबी नज़र नहीं आती
तय इलाके रहे हँसीं रुत के
इसलिए वो इधर नहीं आती
जी रहे जिस ख़राब हालत में
मौत क्या सोचकर नहीं आती।

3
वही है मन कि जो होता थके का
घनेरी छाँव में कुछ बैठने का
हमेशा बोर होते सोचते हैं
समय क्या जा चुका है हर मज़े का
जुदा होंगे जहाँ फिर ठीक मौसम
रहा मैं देख सच होना कहे का
शिला पर बैठ जल में पाँव डालो
यही उपचार होगा आबले का
दिलों के दरमियाँ आए न दूरी
न होता रास्ता इस फासले का
सभी को लाभ शायद इस तरह हो
न सोचा जाय अपने फ़ायदे का
बड़ा हो या कि छोटा कुछ बढ़ा है
उज़ाला दीपमाला में दिये का।

4
नीम की नर्म–नर्म छैया है
आदमी खुश भले मड़ैया है
छोट पतवार छोट खेवैया
छोट है झील छोट नैया है
छाँव में आँख मूँद पगुराती
सर्व संतुष्ट सिर्फ गैया है
प्यार–त्योहार आज राखी का
खुश बहन है प्रसन्न भैया है
ख़ूब रक्खे ख़याल बच्चों का
अब भले वो गरीब मैया है
लग रहा है ख़रीद ली दुनिया
पास जिसके जरा रुपैया है
एक है जिंदगी कि जैसे सच
एक सबका नहीं रवैया है।

वार्ता

श्याम सुंदर दुबे से अश्विनी कुमार दुबे की बातचीत

अश्विनी कुमार दुबे
376–बी, सेक्टर आर, महालक्ष्मी नगर,
इंदौर–452010 (म.प्र.),
मो.–9425167003

प्रश्न 1 : आप बुंदेली भाषा और साहित्य के गंभीर अध्येता और वरेण्य साहित्यकार हैं, कृपया बुंदेली भाषा के उद्‌भव और विकास के संबंध में कुछ बताएँ?

उत्तर : भाषाओं के उद्‌भव और विकास की कहानी जितनी अनुरंजनात्मक जिज्ञासाओं से परिपूर्ण है, उतनी ही वह रहस्यमय है। कम–से–कम उद्‌भव के तो केवल कयास ही लगाये जा सकते हैं। कोई पुष्ट प्रमाण इस विषय के हमारे पास नहीं है। हमलोग वैदिक संस्कृत तक पहुँचते हैं, क्योंकि उसके स्वरूप और उसकी संरचना के मौखिक साध्य इस कुशलता से सुरक्षित रखे गए कि वह पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुरक्षित रहे। इसके बाद भाषाविद् प्राकृतों की चर्चा करते हैं, जिनमें प्रथम प्राकृत 500 ई.पू. में 1 ई. तक पालि को माना गया। 1 ई. में 500 ई. तक प्राकृत और 500 ई. से 1000 ई. तक अपभ्रंश को जाना जाता है। इसमें द्वितीय क्रम में जो प्राकृत है, उसको शौरसेनी प्राकृत, मागधी प्राकृत, अर्द्ध मागधी प्राकृत, पैशाची प्राकृत और महाराष्ट्री प्राकृत के पाँच रूप प्रचलित हुए। इनमें अपभ्रंश भाषाएँ प्राकृत एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के मध्य जन्मी जनभाषा हैं। बुंदेली शौरसेनी की पश्चिमी शाखा की बोली मानी गई है। इसका उद्‌भव 1000 ई. पू. के आसपास माना गया है, अब इस परिदृश्य में प्रश्न यह है कि जिस वैदिक संस्कृति को प्रारंभिक स्तर पर रखा गया, वह परिनिष्ठित एकदम मुकम्मल भाषा है, इसलिए इसे देववाणी भी कहा गया। ऐसी भाषा एकाएक नहीं बनती, उसके अस्तित्व में आने के पूर्व भी किसी–न–किसी भाषा का प्रयोग होता रहा होगा। भले ही वह कबीलाई भाषा रही हो, एक बृहत् समुदाय में प्रचलित न रही हो। इन कबीलाई भाषाओं के परिणामस्वरूप ही किसी एक विस्तृत क्षेत्रीय भाषा ने जन्म लिया होगा। इन कबीलाई भाषाओं और उनके सामूहन से उपजी भाषा का रूप हमारे ज्ञान में नहीं है। सब अंधकार में खो गया है। निश्चित ही वैदिक संस्कृत के पूर्व भी कोई बोली वाणी रही होगी। जहाँ तक बुंदेली का प्रश्न है तो इसे 1000 ई. के बाद की बोली माना जाता है, न केवल बुंदेली, बल्कि आधुनिक अन्य बोलियाँ भी इसी के आसपास उदय हुई हैं। बोली के विषय में कहा गया है कि सात कोस पर बदल जाती है, इसलिए बुंदेली के भी प्रभेद हैं। लोधांती, पवारी, बटोला, बनाफरी, कुंद्री, निबह, भदौरी आदि इसकी उपबोलियाँ हैं। बुंदेलखंड में व्यवहृत होने के कारण इसका नाम बुंदेली पड़ा।

बोलियों का उद्‌भव नदियों जैसा नहीं है। उनके प्राकट्य का भी कोई निश्चित समय नहीं रहता है। एक मजेदार बाकया आपको सुनाता हूँ। हमारे भीतर यह निश्चित हो चुका था कि बुंदेली का उद्‌भव 1000 ई. के बाद हुआ। मुझे जबलपुर विश्वविद्यालय में राजशेखर पर आयोजित संगोष्ठी में वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया था। मैंने राजशेखर की प्रसिद्ध नाट्य कृति 'कर्पूर मंजरी' पर व्याख्यान देना तय किया। कर्पूर मंजरी में संवाद प्राकृत में भी हैं, यह छठवीं शताब्दी के आसपास लिखी गई है। राजशेखर कान्यकुब्जेश्वर के यहाँ राजकवि थे। कान्यकुब्जेश्वर सत्ताच्युत हुए, तो राजशेखर कान्यकुब्ज नगर से भागकर त्रिपुरी (जबलपुर) आ गए थे। यहीं उन्होंने 'कर्पूर मंजरी' की रचना की। कानपुर के इलाके से चलकर त्रिपुरी तक आने में उन्होंने लगभग पूरा बुंदेलखंड तय कर लिया था। यहाँ की बोली–बानी सुनते–सुनाते वे त्रिपुरी पहुँचे थे। जब मैंने 'कर्पूर मंजरी' के प्राकृत में संवाद पढ़े तो मैं चौंक गया था। इन संवादों में बुंदेली की क्रियाएँ और मुहावरे मुझे मिलें। मैंने जब अपने वक्तव्य में बुंदेली को छठवीं शताब्दी के पूर्व की बोली के रूप में प्रतिष्ठा दी तो उस समय के अखबारों में यह समाचार प्रमुखता से छपा।

प्रश्न 2 : किसी भी बोली भाषा का उस क्षेत्र के सांस्कृतिक परिवेश में गहरा संबंध होता है। कृपा कर बुंदेलखंड की संस्कृति ने बुंदेली भाषा के संबंध और महत्त्व पर प्रकाश डालें?

उत्तर : संस्कृति के निर्माण में निर्धारित क्षेत्र की भूभौतिकी वहाँ के जीवन की प्राकृतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ और वहाँ की चिंतनपरक धारणाओं का विशेष योगदान होता है। भाषा यद्यपि इन सबकी अभिव्यक्ति का माध्यम है, किंतु वह भी व्यावहारिक स्तर पर संस्कृति का घटक ही है। ये सभी घटक अपनी पारस्परिकता में जो एक उच्च जीवन मूल्योंवाली चेतना का निर्माण करते हैं, यही चेतना संस्कृति कही जा सकती है। ये सभी एक दूसरे से संबंधित होनेवाले घटक तत्त्व हैं। स्पष्ट है की बुंदेली भाषा की ध्वनियों, उसमें निहित प्रतीकों और उसके अर्थ संसार में जो व्यापक जीवन बोध समाया हुआ है, वही बुंदेली संस्कृति है।

बुंदेलखंड अपनी भूभौतिकी में उबड़–खाबड़ है। पहाड़ों टोरियों, गुफाओं, सघन वनों की डांगो से अच्छादित यह क्षेत्र लंबे समय तक एकौतिक ही रहा। यहाँ प्रकृति का जो वैभव है, वह कुछ संघर्ष करके ही पाया जा सकता है। इसलिए सौंदर्य और संघर्ष का यह क्षेत्र जीवन में जहाँ कड़कपन लाने वाला रहा है, वहीं वह प्रेम के सरस झरनों का आनंद लेनेवाला भी रहा है। बुंदेली की टोन में यह दोनों भाव–बिंदु हैं। अक्खड़ता में वह कहता है–''एक बुंदेलखंडी और सौदंडी'' और प्रेम भाव में उसकी अभिव्यक्ति होती है–''एंगर बैठ लेव कछु काने।'' यहाँ का शक्ति–प्रदर्शन आल्हा की रचना में है, तो शृंगार की पराकाष्ठा ईसुरी में है। यहाँ काम का उद्वेग खजुराहो में है, तो भक्ति की साधना ओरछा में है। यह विरुद्धों के सामंजस्य में जीता है। सघन जंगलों में लमटेरा गाया जाता है, तो नर्मदा के कछार में बमभुलिया, यहाँ रमतूला बजता है, तो हाथी जैसा चिंघाड़ता है, किंतु विवाह में यही वाद्य समां बाँधता है। नगड़िया की टनटनाहट जंगलों में भी निनाहित हो उठती है। राई का घांघरा फैलता है, तो बुंदेलखंड की घाटियों में चक्कर लगाती हवा सनाका खा जाती है। बेड़िनी के पाँव जब थिरकते हैं तो जमीन के कंकड़ तक नाचने लगते हैं।

यहाँ वर्ग वैषम्य है। शोषण और भय के दबाव में यहाँ का निरीह जन केवल खटना जानता रहा है, किंतु इसी ने यहाँ की लोक संस्कृति को जीवित भी रखा है। स्वांग जैसी नाट्य कला में उसने व्यंग्य के स्तर पर अपना आक्रोश भी व्यक्त किया है, किंतु मनोरंजन में रमकर। वे सब कुछ बुंदेली भाषा में ही संभव होता रहा है–इसलिए बुंदेली में यहाँ की संस्कृति की रंगतें और रवायतें भी शब्दों में कुंडलीमार कर बैठी हैं। बुंदेली का व्यंग्यभरा स्वभाव अच्छे–अच्छों को धराशायी कर देता है।

प्रश्न 3 : बुंदेलखंड के सामाजिक जन–जीवन, परंपराओं, रहन– सहन और लोक व्यवहार पर कुछ कहें?

उत्तर : बुंदेलखंड के सामाजिक जन जीवन में ठहराव की स्थिति रही है। यहाँ लंबे काल तक शिक्षा का अभाव रहा। डाकुओं का आतंक भी इस क्षेत्र ने झेला है। सामंती प्रभावों ने इस क्षेत्र के जन को उन्मुक्त नहीं होने दिया। पिछली शताब्दियों में अकालों की चपेट में यह क्षेत्र रहा। कृषि प्रमुख व्यवसाय जरूर रहा है, किंतु सिंचाई का अभाव, लागत की कमी के कारण यहाँ का औसत किसान पनप नहीं पाया। डोंग–धतूरों और रुढ़ियों में जकड़े रहने का अभिशाप भी यहाँ के जन ने झेला है। यह सब इसकी एकांतिकता के कारण हुआ। यहाँ का आदमी बाहर जाने से अक्सर कतराता रहा है। कोई उद्योग–धंधे विकसित नहीं हो पाए, इसलिए बेरोजगारी का पहाड़ यहाँ के आम लोग झेलते रहे हैं। बीड़ी के उद्योग ने जरूर कुछ सहारा दिया, लेकिन यह काफी नहीं था। यही वजह है कि यहाँ का कर्मठ व्यक्ति धीरे–धीरे आलसी हो गया और तिकड़मबाजी के रास्ते खोजने लगा।

यहाँ की स्त्रियाँ मेहनतकश और घर–गृहस्थी को समर्पित हैं। वे जितना काम घर में करती हैं, उसमें अधिक खेतों में मशक्कत करती हैं, फिर भी उनका अनेकमुखी शोषण होता रहा है। व्रत–उपवास, पूजा–पाठ, तीज–त्यौहार में स्त्रियों ने रुचि लेकर इन्हें बुंदेली समाज में परंपरागत तरीके से जीवित रखा है। यहाँ भोजन अधिकतर मोटे अनाजों का रहा है। पहाड़ी इलाकों में जंगली फलों को प्रमुखता में उल्लेखित किया जा सकता है। अधिकतर जंगलों में गौह जाति के जन निवास करते हैं। उनका खान–पान जंगल आधारित फल आदि हैं–''महुवा मेवा बेर कलेवा, गुलगुच बड़ी मिठाई। इतनी चीजें चाहो तो गुड़ाने करो सगाई।''

इस क्षेत्र में जितने शिव, राम, कृष्ण और दुर्गा के मंदिर–मठ हैं, उतने ही भूत–प्रेतों के चबूतरे भी मिल जाएँगे। धार्मिक दृष्टि से बुंदेलखंड अपनी केंद्रीय स्थिति के कारण अनेक संप्रदायों को प्रश्रय देनेवाला रहा है। यहाँ का जीवन सादगी संपन्न और मनघुन्ना रहा है। पहनावा यहाँ की ऊबड़–खाबड़ता से जूझने के लिए चुस्त और गाँठ बंध वाला रहा है। स्त्री–पुरुष दोनों लाँग वाली धोती पहनते थे। ग्रामीण क्षेत्र में पारस्परिक प्रेम से परिपूर्ण संबंध सभी जातियों में रहे हैं।

प्रश्न 4 : लोकगीत और लोक संगीत में भाषा का महत्त्व सर्वविदित है। कृपया बुंदेलखंड के लोक काव्य और लोक संगीत में बुंदेली भाषा के अवदान पर प्रकाश डालें?

उत्तर : गीत और संगीत का अंततोगत्वा आधार शब्द ही होते हैं। शब्द अपने परिवेश से ही अपनी शक्ति अर्जित करते हैं। परिवेश जनित प्रभाव का एक उदाहरण देना चाहूँगा। एक वाक्य है..''तंग गली में कंकड़ गड़ता है।'' इसे जब ब्रज भाषा में बोला जाएगा, तो होगा–''साँकरी गली में अलि कांकरी गड़तु है।'' जब बुंदेली में बोला जाएगा तब कहा जाएगा–''संकरी कुलिया में कंकड़ गड़ता है।'' यह रिदम का खेल है और यह रिदम परिवेश से आई है। बुंदेलखंड की अपेक्षा व्रजक्षेत्र समतल और अधिक उर्वर है, इसलिए वहाँ की भाषा में कोमलता है और संगीत तत्त्व की महीनता है, जबकि बुंदेलखंड की प्रकृति उचट्टा खानेवाली है– इसलिए यहाँ का शब्द उचटता–सा है। यद्यपि संगीत में इसकी भी सिंफनी प्रभावशाली होती है। आल्हा गायन में जो शब्द की ऊर्जा है–वह बुंदेली की भाषिक प्रकृति से उपजी ऊर्जा है।

गीत शब्द संयोजन का भी कमाल है। वह उदाहरण आपने सुना होगा। जिसमें बाणभट्ट अपनी अधूरी कृति 'कादंबरी' की पूर्णता के लिए अपने मुमूर्त क्षणों में अपने दोनों पुत्रों की परीक्षा लेता है। 'पास में सूखा वृक्ष बड़ा है।' संस्कृत में दोनों पुत्र इसे बोलते हैं–एक कहता है–'शुष्कः वृक्षः तिष्ठति अग्रे।' दूसरा कहता है–'नीरस तरुरिः विलसति पुरतः।' आप सोच लीजिए बाणभट्ट ने किसे कादंबरी पूर्ण करने का आदेश दिया होगा। बुंदेली का एक शब्द है–'ठोंडे' जब इस शब्द का प्रयोग गीत और संगीत के लिए चुना गया तो मुखड़ा बना 'ठोंड़े रहियो यार' यहाँ ठाँड़े शब्द आड़े नहीं आया, वह बुंदेली संगीत में चमक पैदा करने वाला बन गया।

बुंदेली की प्रकृति कठोर भी है, जैसे चट्टान पर घन पटकने की ध्वनि होती है, वैसी शब्दावली और उनकी संगीतात्मक रचनाएँ बुंदेली में प्राप्त होती है, 'ठट्ठ के ठट्ठ सुभट्ट बड़े, लिए लट्ठ चड़े बखंड सु गाड़ी।' जैसी शब्दावली बुंदेली के ठसक भरे ठाट को व्यक्त करती है, इसे तलवार भाँजते हुए चक्कर लगाते गाया जाता है। संगीत का उच्च स्वर ही इसके लिए है।

बुंदेली का एक ओर कोमल स्वभाव भी है। जिसकी कोमलता उसने अपनी काली मिट्टी से पाई है–अपनी नारी–चेतना से प्राप्त की है। बुंदेली ने प्रेम के लिए नाजुक शब्द तलाशे हैं। वे प्रेम पगे बोल बारीक रेशों से बुने संबंधों में भिंदे हुए हैं। संगीत के नर्म–विलास में प्रयुक्त होने वाले षड़ज, धैवत, मालकौंस जैसी रागमाला का प्रयोग बुंदेली की राई फागों और गारियों में होता है। शब्द–रचना का उदाहरण लीजिए–''पिया कैसे डुलाऊँ रस के बिजना। मोरी नरम कलाइयाँ कसे कंगना।'' शब्द के मर्म को छूनेवाली इस शृंगारिकता में बुंदेली की मनोरम संगीत सृष्टि है। बुंदेली के असल स्वरूप को यदि एक पंक्ति में पाना चाहते हैं तो 'नेक ठाड़े रही रमिया रंग डार दें। गति को रोककर रंग डारने का यह निहोरा।' शब्द की मरोड़ का उदाहरण ही है।

प्रश्न 5 : भारत के स्वाधीनता आंदोलन में देश की हर भाषा ने अपनी भूमिका निभाई है। उस समय देश के नवजागरण में बुंदेली पर कुछ कहे?

उत्तर : स्वाधीनता आंदोलन की शुरुआत बुदेलखंड में ही हुई थी। मन 1942 में किए गए जन विद्रोह का आधार बुंदेलखंड का राई नृत्य था। वह 1857 ई. के पहले का अंग्रेजों के विरुद्ध उग्र आंदोलन था। फिर झांसी की क्रांति और लक्ष्मीबाई के पराक्रम से तो सभी परिचित हैं। बुंदेलखंड में चप्पे–चप्पे पर अंग्रेजों के दमन के स्मृतिचिह्न विद्यमान हैं। बुंदेली भाषा में रचे गए लोकगीतों ने जन सामान्य को उद्वेलित किया और उन्हें अंग्रेजों के विरोध में लामबंद किया। हर बोलों ने बुंदेली में स्वतंत्रता के वीर नायकों का सुयश गाँव–गाँव, घर–घर फैलाया। चरखारी के राजा परीक्षित की सेना ने फिरंगी सेना का डटकर मुकाबला किया। बुंदेली में परीक्षित (842–57) की सेना की तैयारी देखिए ''काबुल और खेदान देस हैं जां से चढ़े फिरंगी। पूछत बारंबार कहां है राजा जंगी। राजा जंगी जैतपुर को पुरजन के अधिकार। जंग की करें तैयारी डांगई बगौरा की।'' सामान्य जन की सहभागिता का वर्णन करता यह पद बुंदेली की आन–बान–शान का द्योतक है, ''कर सथी पूजा सुमर लये राम। भूरागढ़ के किले में खूब लड़े ज्वान। नौ सौ खुरपी हजार हंसिया। नदिया–नदिया भागे नवाव रसिया। भागे फिरंगी महोबा को जाएँ। राजा परीक्षित खदेड़त जाएँ।

लाखन सिंह दौआ को बुंदेली कवि याद करता है– ''लछमन सींग फिरत है दौआ। मारत खात लखत अंगरेजन कारत ककरी जौआ। भगे फिरत अंगरेजन बेकल दौजा हो रओ लौआ।'' स्यामल गिरी गोसाई ने साधुओं की सेना बनायी थी। जिन्होंने चित्रकूट पर आक्रमण कर दिया था। ''सात दिनां लौ चली लराई गिरी गोसाई हुमके। काटकूट के सबई फिरंगी चित्रकूट पे धमके।'' बुंदेली नारी के साहस का लोककवि चित्रण करता है– ''बांदा लूटौ रात में गुईयों। सीला देवी नरी दौर के संग में मोक

मेहरियां।'' अंग्रेजों की क्रूरता देखिए, ''चूना मूडन पे बुझवा दये। हांत–पांव में कीलें ठौकी पाछे से संदवा दये।'' बुंदेली काव्य में गांधी और शौकत अली का भी स्मरण किया गया है–''सौकत अली और गांधी ने सब खाँ दजओ जागाई। द्विज खुमान अब अपनी किस्मत उगत देत दिखाई।''

इस तरह बुंदेली ने न केवल स्वतंत्रता की अलख जगायी, बल्कि नव जागरण का शंख भी फूँका। लोक कवि कहता है कि ''बहुना चरखा रोज चलाओ।'' आत्मनिर्भरता का संदेश देने वाली बुंदेली ने निडरता का वातावरण बनाया।

प्रश्न 6 : आजादी के पश्चात् देश में तेजी से परिवर्तन हुए ये परिवर्तन हमें भाषा और साहित्य के स्तर पर दिखाई देते हैं। बुंदेली भाषा और साहित्य इस परिवर्तन से किस प्रकार प्रभावित हुआ? आजादी के बाद आए बुंदेली के बदलाव पर कुछ कहें।

उत्तर : भाषा में परिवर्तन लोक–व्यवहार से आता है। आजादी मिलने के बाद समाज में परिवर्तन आना स्वाभाविक है, किंतु ये न मान लिया जाए कि इससे कोई भाषा बदल जाएगी। भाषा में परिवर्तन आ जाएगा। भाषा परिवर्तन की गति बहुत धीमी और जटिल है। हाँ, इतना जरूर हुआ कि आजादी के बाद विकास के

अनेक द्वार खुले। आवागमन, व्यापार, धंधे, शिक्षा आदि में समाज आगे बढ़ा। अन्य बोलियों से बुंदेली का संपर्क बढ़ा। सरकारों ने बोली–विकास के लिए संस्थान स्थापित किये। इन सबका सुखद परिणाम यह हुआ कि बुंदेली की पहचान शुरू हुई। फिर भी बुंदेली समाज अपनी बुंदेली के प्रति अनुदार रहा। यह तब पता चलता है– जब दूर देश में बुंदेली जन एक दूसरे से मिलते हैं, तब वे बुंदेली में नहीं बतियाते। बुंदेली के प्रति हीन भावना बड़ी प्रबल रही है। पर कुछ–कुछ इस हीनभावना से बुंदेलखंड उबर रहा है। बुंदेली सम्मेलन हो रहे हैं। बुंदेली में फिल्में वन रही है, बुंदेली पीठों की स्थापना हो रही हैं। बुंदेली पाठ्यक्रमों में आ रही है। तो यह आश बँधती है कि बुंदेली अब वह सब पा लेने की उतावली में है, जो उसने पाया नहीं था। वह हिंदी में अपने शब्द ला रही है। बुंदेलखंड के साहित्यकार हिंदी की अपनी कृतियों में बुंदेली शब्द ला रहे हैं। बुंदेली की राग–रागनियाँ उसके गीत फिल्मों में आकर्षण बन रहे हैं। एक फिल्म मैंने देखी थी, जो बुंदेली संवादों में ही सजी थी। नाटक बुंदेली में धूम मचाए हैं। अंग्रेजी, संस्कृत और हिंदी नाटकों के अनुवाद बुंदेली में हो रहे हैं। अलखनंदन जैसे नाट्य निर्देशक ने तो नट बुंदेले नाम में अपनी नाटक संस्था बनाई थी। यह बुंदेली का प्रसारी परिदृश्य है।

बुंदेली के गद्य साहित्य में आशातीत प्रगति हुई है। बुंदेली में उपन्यास, जीवनी, नाटक, यात्रा–संस्मरण, निबंध जैसी विधाओं में खूब लिखा जा रहा है। बुंदेली कविता के नए–नए क्षितिज खुल रहे हैं। बुदेली में पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो रही हैं, किंतु यह सब ऐसे समय में हो रहा है, जब लिखित अक्षर बाँचने

वालों का टोटा पड़ रहा है। 'जंगल में मोर नाचा किसने देखा।' बात तो तब बन सकती है, जब घर में प्रत्येक सदस्य बुंदेली का प्रयोग अपने दैनंदिनीय कार्यों में बेझिझक करेगा।

प्रश्न 7: बुंदेली भाषा के कुछ कालजयी कवियों–लेखकों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर कुछ संक्षेप में कहें?

उत्तर : वैसे तो बुंदेली क्षेत्र में अनेक कालजयी रचनाकारों का जन्म हुआ। वे साहित्य के आधारस्तंभ है, किंतु उन्हें सर्वांग बुंदेली कवि या साहित्यकार नहीं कहा जा सकता है। मध्यकाल में जिन दो भाषाओं का दबदबा था–वे थीं ब्रज और अवधी। भले ही किसी अन्य क्षेत्र का रचनाकार हो– इन क्षेत्रों को छोड़कर तो वह इनके प्रभाव से नहीं बच पाया। चाहे महाकवि तुलसीदास हों, बिहारी हों या पद्माकर उन्हें शुद्ध बुंदेली कवि नहीं कहा जा सकता है, जबकि इनके काव्य में बुंदेली शब्द मिलते हैं। यदि बुंदेली में ही अपनी रचनात्मकता को प्रस्तुत करनेवाले रचनाकारों पर विचार किया जाए, तो ईशुरी, गंगाधर व्यास और छत्रसाल जैसे कवियों का स्मरण किया जा सकता है। ईशुरी पर व्यापक कार्य हुआ है, मेरी भी एक पुस्तक ईशुरी पर है, जो एन.बी.टी. से प्रकाशित है। बुंदेली भूमि में यहाँ के संस्कारों में रचे–बसे और बुंदेली की भाषिक शक्तियों के गहन पारखी ईशुरी ने बुंदेली में फागों की रचना की है। अपने आसपास और अपने समय समाज

पर उन्होंने खूब लिखा है। इस सबके बावजूद वे शृंगार के अद्वितीय कवि हैं, गहरी अनुभूति और प्रभावशाली व्यंजना वृत्ति उनके काव्य में प्राप्त होती है। वह जीवनाशक्ति के कवि हैं। बुंदेली में उन्होंने नए प्रयोग किए। वे लोकगायकों के प्रिय कवि हैं। गंगाधर व्यास भी फागों को रचते रहे हैं–उनमें शृंगार की गहरी दृष्टि है। छत्रसाल राजा थे, वे कवियों को महत्त्व देते थे। भूषण जैसे कवि को उन्होंने अद्वितीय सम्मान प्रदान किया और भूषण ने उनके व्यक्तित्व को केंद्र बनाकर कविता रची। छत्रसाल की कविता में भक्ति–भावना का प्राचुर्य है, किंतु वे समाज की नैतिक चेतना को संबोधित करने

वाले कवि थे। इसलिए उनके काव्य में भक्ति के अलावा, नीति और राज–समाज के लिए शिक्षा–जैसे विषय प्राप्त होते हैं।

बुंदेलखंड में पांडुलिपियों को तलाश कर उन्हें प्रकाश में लाने का काम ना के बराबर किया गया है। एक तरह से इस दिशा में अनुसंधान का अभाव रहा है। यही वजह है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में बुंदेली रचनाकारों का जिक्र हुआ ही नहीं है। एक लंबा अंतराल बीत जाने के बाद इस दिशा में कुछ प्रयास हुए हैं, जब तक अनेक पांडुलिपियाँ नष्ट हो गईं। सागर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में बुंदेली पीठ की स्थापना को कई दशक बीत गए हैं। प्रारंभ में इस पीठ पर खूब काम हुआ है। पांडुलिपियों का संग्रहण भी यहाँ किया गया था। मुझे याद आ रहा है, जब मैंने सन् 1966 में हिंदी विभाग में एम.ए. के लिए प्रवेश लिया था, तब वहाँ रुचिपूर्वक कार्य किया जा रहा था। हम छात्रों को प्रेरित किया जाता था कि वे अपने अंचल में पांडुलिपियाँ खोजें। इस हेतु परीक्षा में अंकों का प्रावधान भी शायद रखा गया था। इस तरह के कार्य सतत होना चाहिए। बुंदेली पीठ की पत्रिका 'ईशुरी' ने इस दिशा में कार्य किया था।

इधर मैंने संतकवि जूहीराम के पदों की पांडुलिपि खोजी और उस पर कार्य किया है। वे संत–साहित्य में अपना स्थान रखते हैं। कवि विक्रम विलगैयाँ की कृति 'सुदामा चरित्र' भी एक ऐसी ही पांडुलिपि थी, जिसका उद्धार डॉ. गंगा प्रसाद बरसैयां ने करते हुए सुदामा पर रचे साहित्य में इसे सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ घोषित किया गया। 'सुदामा चरित' पर रची गयी, यह महत्त्वपूर्ण बुंदेली पुस्तक है। मैं जब इसका हिंदी में अनुवाद कर रहा था, तब मैं अचरज में भर उठता था कि कवि विक्रम की कल्पना शक्ति और उनका प्रबंध कौशल कितना शक्तिशाली है। किसी भी बड़े कवि के बगल में खड़े होने के वे हकदार हैं, यदि यह कृति पहले आ गई होती, तो जरूर आचार्य रामचंद्र शुक्ल एक अच्छी टीप विक्रम पर अपने इतिहास में देते। अब भी कुछ संभावना है, बुंदेलखंड में जागृति की जरूरत है– यह क्षेत्र अपने आप में उर्वर क्षेत्र है।

प्रश्न 8: धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उथल–पुथल के बीच बुंदेली भाषा की और साहित्य की भूमिका पर कुछ कहें।

उत्तर : लोकतंत्र में लोक की शक्ति महत्त्वपूर्ण है। लोकतंत्र की परिपक्वता

भी यही है कि सभी तंत्रों पर उसका अर्थात् लोक हस्तक्षेप। अब समय जा पहुँचा है, जहाँ लोक का नियंत्रण सभी क्षेत्रों में हो रहा है। लोक भाषाओं में प्रारंभिक शिक्षा देने का प्रस्ताव आ चुका है। इस परिदृश्य में बुंदेली की भी अपनी पहचान स्थापित हो रही है। धार्मिक क्षेत्र में ऐसे कथावाचक आ रहे हैं, जो
संपूर्ण कथा बुंदेली में कहते हैं और वे सफल हैं। बुंदेली में धार्मिक महत्त्व की पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। बुंदेली तीर्थस्थलों का महत्त्व बढ़ रहा है। बुंदेली भजन–कीर्तन लोकप्रिय हो रहे हैं।

सामाजिक क्षेत्र में बुंदेली में आमंत्रण देना। पुराने संबोधनों का पुन: जीवित होना–बुंदेली में सभा संचालन तथा बुंदेली गान–तान को उत्सवों त्योहारों पर विशेष महत्त्व प्रदान करना और
बुंदेली कहावतों, बुंदेली भोजन पद्धतियों, बुंदेली चिकित्सा प्रणाली की मान्यता, समाज में उसका स्थान बनाने में लोग लगे हैं। अब राजनेतागण भी समझ चुके हैं कि बुंदेली उनकी नैया पार लगाने
की बड़ी पतवार है। इसलिए वे बुंदेली में भाषण दे रहे हैं। बुंदेली में रचे लोकगीतों को प्रचार का माध्यम बना रहे हैं। टीकमगढ़ के राजा वीर सिंह देव ने बुंदेली को राजभाषा बनाया था।

रही उचल–पुथल की बात, तो भाषा उथल–पुथल की साक्षी भी होती है। इसे प्रकट करने का माध्यम भी होती है। इसे उकसाने का कारक भी बनती है और इसे शांत कर समरसता लाने का संदेश भी देती है। बुंदेली यह सब कुछ कर रही है। उसके पास तक जाएँ, तो आप बुंदेली के आईने में यह सब कुछ देख सकेंगे।

प्रश्न 9 : बुंदेली भाषा के भविष्य को आप किस तरह देखते हैं और देश के विभिन्न अंचलों की भाषा के साथ बुंदेली के अंतर्संबंध पर आपके विचार?

उत्तर : मैं तो आशावादी हूँ, इसलिए बुंदेली के भविष्य को सुखद मानता हूँ। इसके कुछ कारण भी हैं। बुंदेली युवावर्ग में लोकप्रिय हो रही है। युवक और युवतियाँ बुंदेली की पारंपरिक धुनों और लोकगीतों की ओर लौट रहे हैं। उन्हें इस हेतु प्रोत्साहन भी मिल रहा है। गोष्ठियों–संगोष्ठियों में बुंदेली पर विचार–विमर्श चलता रहता है। बुंदेली में बात करने की झिझक धीरे–धीरे ही सही टूट रही है। बुंदेली के अनेक चैनल्स कार्यरत हैं। जिन पर दिन–रात बुंदेली के
समाचार और बुंदेली के सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रसारित हो रहे हैं। सबसे बड़ा कारण है कि बुंदेली अस्मिता जाग रही है।

बुंदेलखंड में आवागमन के संसाधन बड़े हैं। यहाँ से प्रव्रजन हो रहा है। बुंदेली यहाँ से कुछ ले जाती है जो अन्य अंचलों की बोलियों को सौंपती है और वहाँ से यह कुछ लेकर लौटती है। जिसे आत्मसात करती है। शब्द, संस्कार, धुनें, लयें और जीवन पद्धतियों का यह आदान–प्रदान हिंदी क्षेत्र में समन्वय और समरसता का वातावरण निर्मित कर रहा है। बुंदेली में बहुत संभावनाएँ हैं। इनका दोहन जब होगा, तब बुंदेली की शक्ति से विश्व भी परिचित होगा। आपने बुंदेली पर बोलने–बताने का अवसर दिया।
बहुत–बहुत धन्यवाद!

ग़ज़लें

नवीन माथुर पंचोली
अमझेरा, धार (म.प्र.)
मो–9893119724

झूठ सलीक़े नाम कमाया जाएगा
अफ़वाहों से दिल बहलाया जाएगा
हमसे लेकर ही देंगे हमको लेकिन
हम पर ये अहसान जताया जाएगा
जितने उनकी बातों में आये उनसे
लोकतंत्र का खेत जुताया जायेगा
दोनों खेमें छुपकर हाथ मिलाएँगे
हमको आपस में लड़वाया जाएगा
लाभ मिलेंगे झूठों को ही सरकारी
सच्चाई का हक झुठलाया जाएगा
वोट ख़रीदी की साज़िश में दे देकर
लोगों को कमजोर बनाया जाएगा।
तहज़ीबी पर होगी चुप्पी–ख़ामोशी,
गुस्ताखी पर ढोल बजाया जाएगा।

2

हमारी शान है उतनी हमारे आशियानों में
वतन का नाम है जितना जहाँ के आसमानों में
लगा दें जान की बाजी हम अपनी शान की ख़ातिर
यहाँ है देश भक्ति की रिवायत घर–घरानों में
यहाँ नदियों की कलकल और हवाओं में तरन्नुम है
प्रकृति की सदाओं का असर है हर तरानों में
यहाँ हिंदी की संगत में मचलती बोलियाँ कितनी
लगे मिश्री सा मीठापन हमारी हर ज़बानों में
भरोसा आज हमको सब हमारे हौसलों का है
कि जितना पंछियों को है सभी अपनी उड़ानों में
शहादत से जुड़े किस्से हमारे साथ जितने हैं
बसा रक्खे हैं वो हमने दिलों के हर ठिकानों में
हमारे दुश्मनों ने खूब अपने मुँह की खाई है
रखी है देश ने अपनी आन अपने जवानों में।

3

वो चाँद जैसा रात भर ढलता चला गया
हर कारवाँ के साथ जो चलता चला गया
जब दूर था तो देखने आये सभी उसे
आया वही जब पास तो ख़लता चला गया
सहता रहा है रोज़ ही पत्थर की मार वो
जो पेड़ सबके वास्ते फलता चला गया
दरिया कभी सागर जहाँ जाकर रुकेगा तो
पत्थर लुढ़कते, सोचते गलता चला गया
बैठा रहा, देखा किया जो हाथ बाँध कर
मौका उसी के पास से टलता चला गया।

4

बातों में जब खींचातानी
कहना–सुनना है बेमानी
वो आगे, हम पीछे कैसे
सोच हमारी है बचकानी
जैसा बोया, काटा वैसा
फिर इसमें कैसी हैरानी
जीती बाजी हार गए तो
शर्म से होते पानी–पानी
वो ही न हो पाए अपने
रक्खी जिनसे आना–कानी
हाल छुपाकर हमअपनों के
करते औरों की निगरानी।

संस्मरण

मेरी तीनों माताएँ नहीं रहीं

डॉ. सतीश चन्द्र मिश्र 'बब्बा'
चित्रकूट, उत्तर प्रदेश,
मो. 9451048508

जन्मदात्री माँ जन्म देकर अपने वक्षस्थल में छुपाकर पालती रही, सभी बला से बचाती रही। माँ की व्याख्या कोई कितना ही विद्वान क्यों न हो, कर नहीं सकता। फिर मेरी माँ की बात ही अलग है, सभी बच्चे अपनी माँ के लिए यही कहते हैं।

मेरी माँ भी बचपन में दूध दुहा करती थी। बापू चारा– सानी दिया करते थे। माँ दुध–गड़वा जो दीवार को काटकर बनाया जाता था, फिर उसमें कंडा जलाकर दूध पकने के लिए रखते थे। दुध–गड़वा के मुँह पर एक पत्थर की पटिया ढक दिया करते थे, ताकि बिल्ली दूध को नहीं गिरा सके।

ऐसी माँ जो मेरे खाने के लिए आँगन में गड़ी मथानी पर दूध मथते हुए जब माखन निकल आता था, तब वह छोड़कर इसलिए चली जाती थी, ताकि मैं माखन निकाल कर वहाँ से भाग जाऊँ।

फिर हँसकर माँ बापू से कहती, ''आज फिर बिल्ला माखन लेकर भाग गया है।''

माँ की रहस्यमयी बातें तब नहीं समझ पाया था। आज तो अच्छी तरह से समझ रहा हूँ। मेरी पहली माँ जिसने जन्म दिया था, उसने मुझे पालने के लिए, मुझे बड़ा करने के लिए न जाने कितनी तपस्या की थी।

माँ मघा नक्षत्र में बरसते पानी की झड़ी में भीगती रहती, भैंसें चराती रहती थी। माँ कमजोर थीं, क्योंकि मुझे पालने के लिए दूध, घी भी बेंच दिया करती थी। सिर्फ और सिर्फ मुझे खिलाया करती थी।

एक बार माँ बीमार पड़ गई थी। दादू भाई गुप्ता गाँव में वैद्य भी, डाक्टर भी था। दादू भाई का पिता द्वारका गुप्ता भी वैद्य था, इसलिए गाँव में लोग दादू भाई की दवा पर यकीन करते थे।

दादू भाई ने कहा–''सन्निपात हुआ है, दशमूल का काढ़ा बनाकर पिलाना पड़ेगा। जिसके लिए सरवन, पितवन, भटकटैया छोटी– बड़ी आदि दस जड़ी–बूटियाँ इकट्ठा करके लाओ, तब मैं काढ़ा बनाकर, पीने को दूंगा, तभी यह ठीक हो सकती है।''

हम कई लड़के उन जड़ी–बूटियों की जड़ें दिनभर में खोज पाए थे। फिर महीनों में माँ ठीक हो पाई थीं। माँ बैठी नहीं थी, वह फिर से हमारे लिए खाना बनाकर, हमें खिलाकर, स्कूल भेजकर वह बगीचे में जाकर लकड़ियाँ, कंडे बीनकर लाती थी, तब खाना खाती थी।

तब हमारे क्षेत्र के गाँवों में चना, जवा, ज्वार, बाजरा आदि मोटा अनाज होता था। किसी एक खेत में कठिया गेहूँ देशी बोते थे या चना, जवा, गेहूँ एक साथ बोकर, पक जाने पर गेहूँ की बाली तोड़ लिया करते थे, जो त्यौहारों में एवं मेहमानों के लिए होता था।

त्यौहारों में जब गेहूँ की रोटी बनती थी, चावल का भात बनता था, तब हम मारे खुशी से झूम उठते थे। एक दूसरे से, अपने हमजोली से कहते थे, ''आज हमारे यहाँ बेली रोटी बनी है, आज हम चाउर का भात खाएँगे।''

समय अपने रफ्तार से चल रहा था। हम जवान हुए, माँ बूढ़ी हो गई थी। मेरी शादी सतना शहर में हो गई थी। माँ बहुत खुश थी। माँ अपने मन की बहू पाकर खुश थी, मैं एक अच्छी जीवनसंगिनी पाकर खुश था। उस समय मर्यादा थी, हम पति–पत्नी एक–दूसरे से बापू के सामने, मां के सामने बहुत कम बोलते थे।

माँ मेरे स्वभाव के बारे में, मेरी पसंद के बारे में मेरी पत्नी शोभा देवी को बताया करती थी, माँ शोभा को पढ़ाया करती थी। कैसे, किस तरह से खाना बनाना है, सब कुछ बताया करती थी।

माँ संतुष्ट थी अपनी बहू से। माँ पिताजी के जाने से एक साल बाद ही इस दुनिया से विदा हो गई थी। मैं मां की याद में रो रहा था। मेरी शोभा मेरे पास आकर कहा था कि ''राजा के पापा, तुम रोते क्यों हो? किसी के भी माँ–बाप कहाँ रहते हैं बहुत दिनों तक, फिर मुझे देखो न, तुम दुखी रहोगे तो मैं कैसे सुखी रह सकती हूँ। आओ, एक नया संसार बनाएँ। तुम चिंता मत करो मैं हूँ ना। अगर हमने हिम्मत हार दिया तो इन बच्चों का क्या होगा।''

मेरी शोभा की बात अलग थी। मैंने अपनी शोभा के बारे में अपनी पुस्तक में लिखा है जिसका शीर्षक है–'मेरी शोभा'। अगर मैं अपनी बची जिंदगी–भर अपनी पत्नी शोभा देवी के लिए लिखता रहूँ, जिसका एक नाम भारती भी था, तो भी मैं उसकी नेकदिली नहीं लिख सकता हूँ। मैं अपनी शोभा के अच्छे दिल, कोमल स्वभाव का एहसास मात्र से रोमांचित हो जाता हूँ, मेरी आँखें गीली हो जाती हैं।

एक दिन एक डाक्टर की लापरवाही से मेरी शोभा बहुत ज्यादा बीमार हो गई थी। उसकी बड़ी बहू मोनू थी, जो उसके कुछ गुणों को ग्रहण किया था। मेरी शोभा को डाक्टरों ने बताया था कि, ''यह तीन महीने तक जिएगी, आप अब घर में ही रखिए।'' मेरा लक्ष्य था कि मैं उसका पति मौजूद रहूँ, पर मेरी अर्धांगिनी, जीवनसंगिनी को दर्द हो, दर्द से कराह निकले, मैं सुनता रहूँ, यह मेरे वश का नहीं था। शोभा देवी मेरी पत्नी थी, मेरी मित्र थी, मेरी माँ थी जो मुझे पत्नी बनकर हर वह सुख देती रही, जो पत्नी को देना चाहिए, मित्र बनकर अच्छी सलाहकार थी, माँ बनकर खाना खिलाया करती थी, मुझे गलती पर माँ की तरह ही डाँटती थी। जिस तरह से माँ इंतजार करती थी, मनपसंद खाना बनाकर खिलाया करती थी, मेरी शोभा भी करती थी। गलत मुझे करने नहीं देती थी, सभी मुश्किलों में पीछे नहीं हटती थी, साथ में रहती थी। सभी बलाएँ वह मेरी अपनी मानती थी, वह खुद मेरी बला अपने सिर पर ले लिया करती थी। वह मुझे सभी प्रकार से खुश देखना चाहती थी।

22 मार्च, 2023 को मैं कैसे भूल सकता हूँ, मेरी शोभा की सेवा छोटा बेटा अनुराग, बड़ी बहू मोनू ने इतनी लगन से किया था कि वह एक साल से अधिक समय तक जीवित रही थी। मेरी तपस्या के फलस्वरूप वह बहुत कम कराही थी। तुरंत उसे डाक्टर के पास हम ही ले जाया करते थे।

हाँ, 22 मार्च 2023 को जिस दिन चैत्र नवरात्र शुरू हो रहे थे, उस दिन मेरी शोभा ने अपनी अंतिम साँस ली थी। मैंने कहा, ''शोभा! तुम्हें सुंदरकाण्ड सुनाऊँ?'' मेरी शोभा उस दिन कुछ शिथिल थी, सिर्फ धीरे से कहा था–''हाँ, बब्बा सुनाओ।''

मैं सुंदरकाण्ड का पाठ किया था। वह लेट गई थी। उसकी साँसें चल रही थीं। मैं उसी के साथ सो गया था। तब मेरा बेटा प्रवीण ने कहा था कि, ''पापा! कुछ देर के लिए बाहर घूम आओ आप, मैं अम्मा के पास हूँ।''

मैं नहीं चाहता था कि शोभा से दूर हो जाऊँ। मैं बेटा का मन रखकर बाहर निकल आया था। कुछ देर में ही प्रवीण ने आकर कहा–''पापा! चलो, अम्मा बुला रही है।'' मैं उसके पास गया था। वह तो बहुत कुछ मुझे दो

दिन पहले ही समझा दिया था। उसने कहा था कि ''तुम चिंता मत करना, तुम्हारी बड़ी बहू खाना खाने को देगी।'' में शोभा के पास गया था। मैं अपनी शोभा को अपनी बाँहों में भर लिया था। वह मेरी गोद, मेरी बाहों में आकर मुझे फिर भी कुछ कहना चाहती थी, उसके मुँह से कोई आवाज नहीं निकल पा रही थी।

मेरी शोभा, मेरी दुनिया, मेरी दूसरी माँ मेरी बाहों में ही अपना दम तोड़ दिया था। मेरी दूसरी माँ भी अब नहीं रही, जिसके दुख को मैंने कैसे झेला, यह कैसे बताऊँ, जो कागज पर लिख पाना मुश्किल है, संभव नहीं है।

मेरी बड़ी बहू मोनू जो पति के न रहने पर विधवा हो कर, मुझे कैसे सँभाला था, वह मेरे लिए वंदनीय थी। समय से खाना देना, मनपसंद खाना, नाश्ता सब कुछ वह कैसे कर पाई होगी, भगवान ही जाने। मेरे कपड़े धोने से लेकर, इस्तरी करना आदि सारी जिम्मेदारी उसने खुद ही अपने आप ले लिया था। मेरी बहू माँ की तरह ही मेरा ख्याल रखती थी। ठंड में, गर्मी में, बरसात में वह माँ की तरह ही मेरा ख्याल रखती थी।

समय गतिमान रहता है, समय कभी नहीं रुकता है। दो साल ही बीते थे कि एक दुख मेरे लिए अजगर बनकर मुँह बाए खड़ा था। अचानक बड़ी बहू सीने के दर्द से कराह उठी। हमलोग कुछ समझ नहीं पा रहे थे। गाँव में सरकारी अस्पताल होते हुए भी डाक्टर सहित कोई सुविधा उपलब्ध नहीं थी। तुरंत किराए की एक चारपहिया वाहन लेकर हम जिला चिकित्सालय पहुँचे थे। वहाँ मौजूद डाक्टरों ने कोई उपचार नहीं किया, सीधे मेडिकल कॉलेज अस्पताल के लिए रेफर कर दिया था।

मेरी माँ जैसी प्यार करनेवाली, खाना देनेवाली तड़प रही थी। में कुछ भी नहीं कर पा रहा था। मेरे साथ में उसका लड़का, मेरा पोता एवं एक पारिवारिक मेरा भतीजा जो मेरे बेटे जैसा ही था, हम सब मिलकर कुछ भी नहीं कर पा रहे थे।

मेरी माँ–जैसी मेरी बहू बस यही कह रही थी–''पापा, पापा।'' उसने मेरे हाथ को पकड़ लिया था। अपने बेटे से कहा था–''मैं बचूँगी नहीं। बब्बा का ख्याल रखना।''

एम्बुलेंस में मौजूद कम्पाउंडर भी बेबस नजर आ रहा था। ड्राइवर भी दुखी था। एम्बुलेंस बस दस या बीस किलोमीटर दूर ही चली होगी कि मेरी तीसरी माँ मेरी बहू बेहोश हो गई थी।

नहीं जान सका कि मेरी तीसरी माँ के प्राण पखेरू कब उड़ गए थे। उसकी साँसें थम गई थीं, मशीन चलना बंद हो गई थी, उसकी लाईन सीधी हो गई थी।

मेरे साथ मेरा पोता भी चीत्कार कर उठा था। फिर दूसरी एंबुलेंस में हम अपने घर अपनी माँ–सी बहू को लेकर आ गए थे। समय के साथ–साथ मेरी तीनों माताएँ नहीं रहीं। मैं फिर भी लोगों को देखता हूँ। मैं सचमुच अभी हूँ, समय अपने रफ्तार में चल रहा है, मेरी साँसें भी चल रही हैं, मैं खुद नहीं जानता यह

सिलसिला कब तक चलेगा, मैं कब तक चलता रहूँगा।

लघुकथा :

सुरेश सौरभ
निर्मल नगर लखीमपुर खीरी
उत्तर प्रदेश–262701, मो–7860600355

माँ की सीख

खूबसूरत सुबह का नजारा था, पर सरला पार्क में उदास बैठी थी, उसके चेहरे पर गझिन–गझिन सिलवाटें थीं, तभी उसकी सखी सीमा ने पूछा–''क्या हुआ, क्यों उदास बैठी हो इतना?''

सरला–''कुछ नहीं ?''

सीमा–''कुछ तो है।''

सरला–''दरअसल कल होली में बेटे ने पड़ोस में कुछ लोगों से थोड़ा पंगा कर दिया था। बड़ी मुश्किल में फैसला हो पाया। क्या तेरे बेटे भी होली में किसी से पंगा–वंगा करते हैं।''

सीमा–''नहीं।''

सरला–''क्यों।''

सीमा–'मेरी माँ बचपन में हम भाई–बहनों को समझाया करती थीं कि होली में जबरदस्ती किसी को रंग नहीं लगाना है, न जबरदस्ती किसी के घर में घुसकर या दौड़ाकर रंग–गुलाल पोतना है। प्रेम से, सद्भाव से, जो रंग लगवा ले, उसी को ही रंग गुलाल लगाना। मैं भी हमेशा यही अपने बच्चों को समझाती रहती हूँ, फिलहाल आज तक मेरे बच्चों का किसी से पंगा नहीं हुआ।''

सरला ने लंबी उबांसी ली। बोली–''काश मेरी माँ भी....''

कहानी

एक माँ ने कहा था : सौ साल पहले

डॉ.गिरिजाशंकर मोदी,
सिकन्दरपुर, मिरजानहाट, भागलपुर,
मो0–9934095639

सूखी डाली और पुतलियों में अवसाद की परछाइयों को समेटे एक उदास अकेली चिड़ियाँ, समय के सिलवटों में उम्र के आखिरी पड़ाव पर, खंड–खंड जीवन के फासले को समेटे पंखों में, थम गये डैनों में, मौन सिमटी बैठी है, एक त्रासद कहानी की उसाँसें हो।

यह कहानी है सौ वर्ष पुरानी, सहमी और भींगी एक निर्वाक् जीवन–यात्रा की, जिसे भोगा था, एक माँ ने अपने होशमंद होने के जीवन के पहले और फिर बाद में, एक सामाजिक जड़ता के गहनतम अंधेरे में स्याह नसीब जिन्दगी हो!

इस माँ का नाम भाग्यवती था; लेकिन सभी भागो कहकर पुकारते थे, जो प्यार का स्वतः स्फूर्त सहज नाम था। भागो सात वर्ष की हो गई थी, फिर भी उसका नाम पाठशाला में दर्ज नहीं कराया गया था, पर उसकी सखी पारो पाठशाला जाती थी। भागो ने भी एक दिन माँ से कहा था–'माँ! मैं भी पाठशाला जाऊँगी।' सुनकर माँ असहज हो गयी थी कि लड़की पढ़कर क्या करेगी? और बातें अनसुनी कर चल दी थीं। पर पारो को भागो प्रतिदिन एकटक पाठशाला जाते देखती रहती थी, जहाँ उसके अरमान गुच्छ भीतर–ही–भीतर कुम्हला जाते थे। एक दिन भागो पारो के घर घरकुंडे में गुड़िया सजाती हुई चुपके से पूछा था–पाठशाला में क्या होता है पारो? उसने कहा था–प्रार्थना करती हूँ, पहाड़ा गिनती करती हूँ, फिर अक्षर बोध पढ़ती हूँ। फिर उसने प्रार्थना गाकर सुनाया और कहा–'तुम भी कल से पाठशाला चलो न।' भागो इन बातों में गहराती, दौड़ती अपने घर आई और हिम्मत कर पुनः माँ से बोली–'मैं भी कल से पाठशाला जाऊँगी।' गुरुजी नाम लिखाई एक आना और शनिचरा एक पैसे लेते थे। यह सुनते ही अपने पति को वह शिकायत के लहजे में बोली–'सुनते हैं जी, बेटिया कहती है, वह कल से पाठशाला जाएगी।' उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया, उनके दिमाग में ये बातें ही गूंजने लगी कि परसों ही तो कुटुम्ब आयेगा, फिर लड़की के पढ़ने से क्या मतलब?

भागो कान लगाये सब सुन रही थी। हवा के एक ही झोंके में, उसके उल्लास के सारे दीप बुझ गये और वह समा गई तल्ख अंधेरे में। वह फिर पारो के घर चली गई और रोती हुई बोली–'बाबूजी नहीं पढ़ायेंगे।'

दूसरे दिन भागो अपनी सखियों के साथ बगीचे में झूला झूल रही थी, तभी गाँवों में कानोंकान खबर फैल गई कि बाँका से भागो का कुटुम्ब आ गया। चर्चा तो गाँव में पहले से थी ही कि भागो का कुटुम्ब आनेवाला है, लड़का आठवीं में पढ़ता है, उम्र चौदह साल है, उम्र भी ठीक बैठा है–

''एक वर कन्या दोवर वर ताहि जान विवाह कर।''

भागो की माँ उल्लास में दौड़ती बगीचे में गई और भागो को कही कि चल, भागो! कुटुम्ब आ गया है। सखियाँ तालियाँ पीटने लगीं, यह कहती हुई कि अब भागो का विवाह होगा, भागो को दुल्हा होगा।–भागो माँ का हाथ पकड़े उछलती आई।

गाँव के बूढ़े–बुजुर्ग भी भागो के दरवाजे पर आ गये और महिलाओं की जमघट घर में लग गई। कुछ बूढ़ी आँखें गुनगुनाने लगीं– ''काहे लऽ ये दूधवा पिलौले हो बाबा
काहे लये करलौ दुलार हो।
जानै छेलौ बाबा धिया पराई
लागलौ सुनर वर साथ हो।''

भागो को गाँव की भाभियों ने सजाया–सँभारा और समझाया–देखो, तुमसे कुटुम्ब तुम्हारा नाम पूछेगा, भागो मत कहना, भाग्यवती कहना और सुनो, कुटुम्ब तुम्हारे पिता का नाम पूछेंगे, गाँव का नाम पूछेंगे। इस पर भागो झट से बोली–हाँ, हाँ सब कह दूँगी, ठीक है। जाते ही सबका पैर छूना और आते भी। फिर प्लेट में जिलेबी और लड्डू देख मचल पड़ी, मैं भी खाऊँगी।

कुटुम्ब को भागो बहुत पसंद आया। लड़का तो पसंद था ही। कुटुम्ब ने आशीर्वादी के रूप में भागो की हथेली पर एक चौवन्नी रख दिया। भागो चौवन्नी पर बहुत खुश हुई। वह दौड़ी हुई बगीचे चली गई और सखियों को कही कि चलो, बजरंगी की दुकान, जिलेबियाँ खाऊँगी, चार आने मिले हैं। बच्चों का सुलभ सौंदर्य भाव उनकी चमकती आँखों में दमक उठा था। सभी दौड़ गयी बजरंगी की दुकान।

अगले माह श्रीपंचमी में शादी की तिथि तय हो गई। दहेज के रूप में इक्कावन रुपये की बात हुई। तुरंत धोतियाँ बाजार से लायी गयीं, उसे रंगाया गया और दूसरे दिन सुबह कुटुम्ब की विदाई हुई। गाँव में खुशी का माहौल था, उस जमाने में बेटियाँ समाज की समझी जाती थीं। बेटियों की शादी की चिंता समाज के बुजुर्गों की होती थी।

घर में खुशी का माहौल था, गाँव की औरतें घर में जुटने लगीं, रात–रातभर नाच, गान, गीत चलने लगा। भागो भी चंचल चिड़ियाँ–सी चहकती रहती थी। कभी इस डाल पर, तो कभी उस डाल पर। शादी होने तक तो भागो को बड़ा मजा आया, पर जब उसकी विदाई की वेला आई, तो उस गमगीन माहौल में यह विचलित हो रोने–चिल्लाने लगी कि मैं नहीं जाऊँगी, अपने घर में ही रहूँगी। बहुत समझा–बुझाकर एक झूठे आश्वासन के साथ कि तुरंत फिर ले आऊँगा, उसे डोली पर बिठाया गया, साथ एक दाई गई। उनकी डोली के साथ कुछ दूर तक गाँव की औरतें साथ–साथ गाती चलीं–

''कथी बिनु सुनऽ रे भेलौ बाबा के बगीचवा
कथी बिनु सुनऽ रे भेलौ दादा के हवेलिया
कोयली बिनु सुनऽ रे भेलै बाबा के बगीचवा
धिया बिनु सुनऽ रे भेलै दादा के हवेलिया।''

पर ज्यों–ज्यों पालकी आगे बढ़ रही थी, त्यों–त्यों रोना, चिल्लाना और उसाँसें बढ़ती चली जा रही थीं। एक वीहड़ राह से भागो की जिंदगी गुजर रही थी। ससुराल पहुँचते ही भागो को देखने औरतों का ताँता लग गया था। यह माहौल उसे और भी गहरी टीस दे रही थी, वह कहीं भी कोई समझौता न कर पा रही थी। उसे कहीं कोई ठहराव नजर न आ रहा था। माह भर गुजर गये, पर उसकी खामोशी और रोना उसकी दिनचर्या से अलग न हुई। हठात् एक दिन उसे खबर मिली कि उनके बाबूजी आये हैं, गोतिया के यहाँ ठहरे हैं; क्योंकि वह एक जाहिल जमाना था, मान्यता थी कि पिता बेटी के घर का अन्न–जल ग्रहण नहीं करते हैं।

बाबूजी के आने की सूचना पर भागो बेचैन हो उठी थी, मिलने के उतावलेपन में वह बाहर झाँकना शुरू कर दी थी, फिर पिताजी ज्योंहि आये वह रोती–चिल्लाती पिता से लिपट गई थी और अश्रुधार के बीच पिता को

जकड़ते चिल्ला–चिल्ला कर मिन्नतें कर रही थीं, मैं यहाँ न रहूँगी, मुझे ले चलिये, मैं माँ के पास रहूँगी। पिता भी आँसू न रोक पाये थे, उन्होंने बेटी को ढाढ़स बँधाते हुए कहा–'हाँ, बेटी! ले जाऊँगा, मत रोओ।' उन्होंने समधीजी से बहुत आरजू–मिन्नत की, एक माह के लिए जाने दीजिए, फिर पहुँचा दूँगा। पर समधिन की हठधर्मिता और जकड़न न पिघला। दूसरे दिन सुबह मुँहअंधेरे ही भागो के पिताजी आँसुओं को समेटे चुपके चल दिये, इस सोच के साथ कि बेटी भी पराया धन होती है, हम क्या कर सकते हैं। रास्ते भर उन्हें बेटी के सिवा कुछ न दिख रहा था, बेटी के बचपन, उसकी चपल चंचलता, उसका रोना और तड़पना, उनकी आँखों के सामने से चलचित्र– सा गुजर रहा था, घर पहुँचकर वे फूट–फूटकर रोये। वे भागो का रोना, चिल्लाना, आरजू और मिन्नत की कि माँ के पास ले चलिये, सब कुछ रो–रोकर अपनी पत्नी को सुनाया था...।माँ, याद में कुहरती खूब रोई थी।

भागो सूरज उगने पर पिताजी की इंतजार में बैठी रही, पर पिताजी के न आने पर उसने खोजबीन शुरू की। पता चला कि पिताजी तो चले गये। हठात् सब कुछ शून्य हो बिखर गया, वह धड़ाम से धरती पर गिर रोने–चिल्लाने लगी–'हमरा छोड़ी कै चल्लो गेलो हो बाबू।' और घंटे भर रोने के बाद वह एक अंधेरी शाम की चुप्पी में समा गई। कुछ महीने तक तो वह निराशा की चुप्पियों में, अंदर के दर्द के लहरों में उफनती रही, फिर समय ने समझौता करा दिया और अनेक बंदिशों के बीच भी वह जीने लगी। उस चंचल बाला के ख्वाहिशों की वहाँ कोई कद्र न थी, पुरखों के रूढ़ मानदंडों पर जीना था और सास की परंपरागत संस्कृति के दंश को भोगना था। ये तल्ख हकीकतें उन्हें बुढ़ापे तक बेधती रही थी। जीवन के इस दुखद कालखंड की बीती बातों पर उसाँसें लेती वह, फटी आँखों से आकाश को निर्निमेष निहारती चुप्पी साध लेती थी और वह हो जाती थी कँटीली झाड़ियों से घिरी एक चिड़ियाँ, जो घोंसला में दुबकी रहती थी।

उस जमाने में सैकड़ों साल पुरानी कुरीतियों की यह एक दुःखद बात रूढ़ थी कि बिना गोद भरे लड़की को मायके न जाने दिया जाता था। भागो इसी रूढ़ि के बेरहम शिकार थी।

एक दिन भागो ने उदास सूनी दोपहरी को भोगती, पुराने दिनों को याद करती हुई भावोद्वेग में अपनी सहमी और भींगी आवाज में अपने चौथे बेटे को कहा था–मैं तो बेटा, अपनी शादी के बारह वर्ष बाद मायके गयी थी, जबकि मेरी गोद भरी थी, वह भी मात्र दो दिनों की इजाजत पर, फिर शून्य में समाती माँ बोली...जब मैं बाबूजी के साथ कलबलिया घाट में उतरी थी, तो गजब की स्फूर्ति मुझमें आ गयी थी, मैं घाट पर तेजी से इधर–उधर चहलकदमी करती, आँखें फाड़े निहारने लगी थी, फिर ध्यान में आया, घाट की वह जगह जहाँ मैं अपनी सखियों के साथ स्नान करती थी और एक दिन धार में मेरे कपड़े बह गये थे। फिर मैं फल्कू चाचा की दुकान खोजी, जहाँ बैठ जिलेबियाँ खाती थी, पर वह दुकान न मिली। फिर पापा ने कहा–चलो जल्दी, फल्कू की दुकान अब नहीं है, उसे मरे पाँच साल हो गये, वह तो नाऔलाद था, अतः दुकान उठ गई। मैं पुरानी बातों की यादों में खोई थी, कुछ देर और ठहर जाना चाहती थी, पर पिताजी की जिद पर बैलगाड़ी पर आकर बैठ गई। फिर पुरानी यादों में डूबती उतराती रास्ते के दोनों ओर निहारती, भावों के सुख–दुःख में कब अपने दरवाजे पहुँच गई पता न चला। गाँव में हल्ला हो गया– भागो आ गई। उतरते ही माँ लिपटकर खूब रोई। गाँव की औरतों का आना शुरू हो गया। सब कुशल–मंगल पूछने लगी। पर आनेवालों में मेरी कोई सखी न थी, दो–चार चाचियों और भाभियों को छोड़ सभी अपरिचित थे। मुझे अपनी सखियाँ–सुखिया, मुनिया, चुनिया, उषिया बहुत याद आ रही थी। माँ ने बताया–सभी अपनी–अपनी ससुराल में है। माँ से सारी रात दुःख–सुख की बातें होती रहीं। सुबह उठते ही मैं सीधे बगीचा में गई। सब कुछ उदास–उदास, सूना–सूना लग रहा था, न कोई सखियाँ थीं और न आम का वह वृक्ष, जिसकी डाली से झूला झूलती थी। थोड़ी देर बगीचे को निहारने के बाद एक सूने झोंके ने घेरा और मैं लौट आई घर।

दोपहर को गाँव घूमने निकली, सब कुछ बदला–बदला सा था, बहुत सारे दरवाजे जहाँ बैठकी लगती थी, भाँय–भाँय था। पता चला कि वे दादा नहीं रहे, अब कोई नहीं बैठता, फिर उस कुँए की जगत पर आकर बैठा, पर कुँए पर पानी भरने की भीड़ नहीं थी। याद आ गई वह बात जब बाल्टी के लिए मुझमें और मुनिया में झगड़ा हुआ करता था, अब मुनियाँ और मैं कहाँ! फिर पाठशाला की आई, मैं तो पाठशाला में न पढ़ी थी, पर न पढ़ने की टीस थी, गई तो पता चला कि पाठशाला अब नहीं चलता। गुरुजी पाठशाला में स्टूल पर बैठे–बैठे ही मर गये थे और रोज रात में पंडितजी पाठशाला में उसी स्टूल पर बैठे दिखते हैं।

दो दिन में और क्या देखती, भीतर–भीतर रोती रही थी। अपनत्व और यादों की उछाल में तो गाँव को दो बार नाप ली थी, बगीचा और कुआँ से जुड़ी यादों के दर्द को समा ली थी, कोई सखी भी न मिली थी, गाँव की नई भाभियों से कोई गठजोड़ नहीं था, अब फिर सुबह विदाई का मुहूर्त।

''चल उड़ जा से पंछी कि अब यह देश हुआ बेगाना
खतम हुए दिन इस डाली के उस डाली पर जाना है।''

विदाई के वक्त मैं माँ, बाबूजी से लिपट–लिपट खूब रोई थी। सारा परिवेश अजीब–सा मारक लग रहा था। गाँव की औरतें भी रोई थीं।, साथ–साथ काफी दूर तक आई थीं। रास्ता बड़ा भयावह लग रहा था, बीते दिनों की सभी परछाइयाँ मेरे पीछे–पीछे आ रही थीं। मेरी सखियाँ, गाँव की भाभियाँ सभी उसमें समायी थीं। जबतक घाट न आया, मैं उन परछाइयों में पीछे मुड़–मुड़ निर्निमेष देखती समाती रही थी। फिर दूर से आती गाने की इस आवाज ने मर्माहत कर दिया–

''कौन दिशा में लेके चला रे बटोहिया,
हे ठहर–ठहर ये सुहानी सी डगर
जरा देखन दे, देखन दे
पहली बार हम निकले हैं घर से
किसी अनजाने के संग हो...।''

फिर आगे बचपन की यादों में खोई, कभी आँखों की चमक से, कभी सहमी आँखों से, कभी लजाती और कभी ढीठ होती हुई माँ कहती रही–कुछ माह तो मैं खामोश आँसुओं का जीवन एक गहराती शाम की चुप्पी में जीती रही, फिर वक्त के बहाव में मेरी दोनों चुटीली ननदें सखी की भूमिका में आ गई, उसने दरकिनार कर दी अपनी माँ की सीख, इन्होंने सोचा हम सब तो एक ही डाल की चिड़ियाँ हैं। मेरे जीवन के निर्वात कालखंड कुछ बंदिशों के साथ मिटने लगे थे। रोशनी भी खिड़कियों और दरवाजे से कभी–कभार आने लगी थी, ख्वाहिशों की बातें भी दबे पाँव के नीचे आ जाती थीं।

एक दिन माँ ने फिर मुस्कुराते हुए कहा था–''जब मैं शादी के बाद आई थी, तो तुम्हारे पिताजी, टिफिन में स्कूल से ढेर सारे गेंदा फूल लेकर आते थे और मुझपर उछाल देते थे, इसपर मुझे बड़ा गुस्सा आता था और मैं झिड़क देती थी। ताक में दोनों ननदें चिढ़ाकर नाचती थी और गाने लगती थी–'गेंदा के फूलवा ना मारो श्याम पईयाँ पड़ूँ..।' मैं गुस्से में कहती–देखो, तुम्हारे भाई की यह चुहलबाजी अच्छी नहीं लगती और तुम मजा लेती हो। मैं यह शिकायत सासू माँ से भी कही थी, पर वह झिड़क ली और बोली–चल हठ

निगोड़ी।

फिर एक दिन माँ उदास–सी अपने कोटरों की गहराई में बैठी किसी सोच में थी। मैंने पूछा था–क्या बात है? माँ बोली–पुराने दु:ख गहरा आये हैं बेटा। इस परंपरागत सास संस्कृति में, जो उसने दु:खद अध्याय भोगा, वह बड़ी बेशर्मी से अपनी बहुओं पर भी क्यों लादती आ रही है। बहुओं के जीवन को क्यों एक हतभागी दासी में तब्दील कर देती है। एक दीपावली में गली से सड़क पर उत्सुकतावश मैंने झाँकी थी कि ददिया सास की बिल्ली–सी पैनी नजर मुझपर पड़ी और वह चिल्लाकर सासू माँ को कहने लगी–देख रे बेटखौकी, कैसी बेहाया पतोहू लाई है, सारे घर का नाक कटा कर रख देगी। पता नहीं, किस–किसने देखा होगा। फिर तो हम पर आफत मँडरा आयी–मेरे मायके के सात पुस्तों का उद्धार हुआ और मुझे जूते पर थूककर चाटना पड़ा कि अब कभी बाहर न झाकूँगी।

फिर पुरानी यादो के बहाव में माँ ने आगे कहा–तुम्हारे होने तक मैं चहारदिवारी की दुनिया की घुटनभरी जिंदगी में रही थी। सास की संस्कृति की रूढ़िगत अमानवीय परंपराओं को मैं तबतक भोगती रही, जबतक की सासू माँ रोगग्रस्त हो पराश्रित न हो गई। अपने लाचार जीवन में वह अपनी गलती स्वीकार करने लगी, एक दिन तो भावावेश में बोली–मैं तुमको बहुत सतायी हूँ, मुझे माफ कर दो। फिर बोली–सब कुछ मुझे अपनी सासू माँ के दबाव में करना पड़ता था। सासू माँ अब अपने पराश्रित जीवन में, मेरी ओर आशा भरी नजरों से देखने लगी थी। अब उनके समय का मन पक्षी उड़न छू हो, क्षितिज मोह में समा काल के गाल में था।

सासू माँ रोज मुझे अपने पास बुलाकर बैठाती और अपने अंदर का रिशता दर्द साझा करती। कहती कि मेरी सास का हर मिनट का आदेश गालियों से संबोधित हो निकलता और मायके को अपशब्दों में लपेट देती। भूखे दिन गुजरता रहता था। कहती थी कि जबतक घर का मर्द नहीं खायेगा, नहीं खाना है, खाना जूठा हो जाता है और फिर उसका जूठन कौन खाएगा, वह तो प्रसाद होता है न बहुओं के लिए। और फिर गये रात सासु के बदन में एक मलिया तेल पिला देना, मेरी दिनचर्या में थी। फिर सुबह चार बजे से ही कामों का दौर और फरमाइशों का दौर। साँस लेने की फुर्सत न मिलती थी।

ग्रीष्म की एक सूनी टंगी दोपहरी थी, माँ अन्यमनस्क गंभीर होती अपनी कोठरी में बँधी बैठी थी, मैं भी जाकर माँ के पास बैठ गयी। फिर वह अपने मायके का दर्द बाँटने लगी। कहने लगी कि उसको एक ही भाई शंकर था, वह रात में खाना खाकर खड़ाऊँ पहन, रोज की तरह गली में टहल रहा था, गली अंधेरी थी, एक साँप ने डँस लिया, हल्ला हुआ, गाँव के लोग जुटे। मन्तरिया की खोज हुई, पर झाड़ने–फूँकने का कोई असर न हुआ। मेरे बाबूजी बाहर गये थे, मेरी माँ बेसुध छाती पीट रही थी। गाँववालों ने भाई को मृत घोषित कर दिया और आनन–फानन में उन्हें जला दिया, जबकि गाँववालों में कानाफूसी हुआ था कि शंकर मरा नहीं था, यह गोतिया की साजिश थी। मेरी बेसहारा माँ दहाड़ मारती, रोती–चिल्लाती बेहोश होती रही। बाबूजी दूसरे दिन आये और इस सदमें से जो खाट पर गिरे, फिर न उठे और महीने भर में वे भी चल बसे। मेरी माँ अकेली जिंदा लाश बनकर रह गई। एक अंधेरी दुनिया में यह स्याह बादल खंडों के बीच एक अकेले टिमटिमाते तारा–सी थी। इस निर्मम दुनिया में यह दु:खद सूचना मुझे दो माह बाद मिली। मैं पछाड़ मारकर गिर पड़ी। ऐसा दु:ख भगवान किसी को न दे। तुम्हारे बाबूजी फिर तुम्हारी नानी को ले आये और नानी यहीं रहने लगी। तुम्हारी नानी को यहाँ बहुत सम्मान का जीवन मिला था, फिर भी अपने घर की याद में कभी–कभी वह घंटों बैठी रोती रहती। मेरे भी आँसू न रुकते थे, मैं माँ को पकड़ रोती थी। फिर माँ बोली–तुम्हारी नानी ने इसी क्रम में कहा था–जब तुम्हारे मामा न रहे, तो तुम्हारी मामी अपने बच्चे को लेकर अपने मायके घोरघट चली गई। नानी रोक न सकी, बैठी रोती रही। फिर नानी ने सुना कि उसने दूसरी शादी कर ली।

फिर माँ ने प्रसंग बदलते हुए कहा–तुम्हारे नाना को अच्छी संपत्ति थी, पर तुम्हारे बड़े भाई ने एक घृणित स्वार्थ के तहत नानी को फुसलाकर खरीक ले गये और नानी से अंगूठा का टीप दिलवाकर सारी संपत्ति बेच दी, लाचार माँ कुछ न बोल सकी, पर चुपके–चुपके खूब रोई। फिर नानी को यहाँ पहुँचा सीधे कलकत्ता चल दिये थे। फिर माँ ने कहा–बेटे की इस धोखाधड़ी पर मैं भी खूब रोई थी, उस संपत्ति से जुड़े अरमान धरे के धरे रह गये।

आज नानी की डीह पर एक बस्ती ही बस गई है, बगीचा विशाल रूप धारण किये हुए है। माँ को यह खबर मिलती रहती थी और मुझे याद है, एक महिला बराबर माँ से मिलने आया करती थी, वही माँ को सूचनाएँ देती थी। माँ कहती थी कि यह महिला खरीक की ही सवासिन है, यहीं किसी बस्ती में इसका ससुराल है, वह महिला हरिजन थी, जो उस जमाने में अछूत थी, पर मायके का होने के कारण माँ उसे बड़े अपनत्व से साथ बैठाती थी, घंटों बैठकर बातें करती थीं। एक दिन हठात् उस महिला के पति ने आकर माँ को कहा था कि वह नहीं रही। माँ फफककर रो पड़ी थी, नैहर की एक बची कड़ी भी टूट गई थी।उस दिन माँ ने खाना नहीं खाया। गुमसुम बैठी रही। अंदर दर्द उछाल मार रहा था।

समय के थपेड़ों के साथ माँ ने जीवन जीना सीख लिया था। उन्होंने पातिव्रत्य धर्म और गार्हस्थ्य जीवन के सारे सकारात्मक तत्त्वों को जाना, पहचाना और समझा था और तदनुसार जीवन जीने लगी थी।

माँ–पिताजी के जीवन के संघर्ष, उनकी गरीबी की बातों के अलावे उनकी ख्याति की बात सारी कहानियाँ सुना गौरवान्वित होती थी। इन बातों के बीच वह क्षण भर कहीं खो जाती थी। पता नहीं भावनाओं के किन रंग लीकों की सुखानुभूति में वह समा जाती थी। माँ मात्र साक्षर थी और न उनको संपर्क के फैलाव की कोई दुनिया ही थी, पर उन्हें गौरवान्वित होने की अपनी समझ की दुनिया थी। जब वह कुछ कहती थी, तो उनके चेहरे की चमक और आँखों के बादलखंड, उनकी बातों की संपुष्टि हेतु अपने वितान में खड़े रहते। वह कहती थी–तुम्हारे पिता मात्र शिक्षक ही नहीं थे, वे कलाकार व साहित्यकार भी थे, इसके अलावे वे अपने समय के ख्यात फुटबॉलर भी थे।

फिर कुछ क्षण मौन रहने के बाद बात आगे बढ़ाती। उन्होंने कहा–तुम्हारे पिताजी बड़े संवेदनशील व्यक्ति थे, वे ईमानदारी के हद में जीते थे, फिर भी गोतिया बेईमानी की नीयत में उन्हें बुरी तरह उलझा दिया और उनके अवकाश–प्राप्ति के बाद आर्थिक स्थिति ठीक नहीं रही थी। तनाव की स्थिति में वे जीने लगे थे। फिर माँ अश्रुधार में डूबती हुई बोली कि अपने इस तनावग्रस्त जीवन में वे लकवाग्रस्त हो गये और फिर मस्तिष्काघात से हमें छोड़कर चले गये। अपने अंतिम क्षण में मुझे निहारते हुए बार–बार इशारा से कुछ कहना चाहते थे, पर मैं अपने अथाह दर्दों में उबलती कुछ न समझ पायी थी। वे क्या कहना चाहते थे, यह बात मुझे आज भी रौंदती है।

पिता की मृत्युशय्या पर माँ उनके पैरों पर माथा पटकती मरमुट्ठ में दोनों हाथों से पैरों को पकड़े, बेतहासा रोती हुई कह रही थी–''की कहै लऽ चाहै छेल्हौ हमरा हो बाबू, हम्में नै समझे पारलियै हो बाबू, आरू तों हमरा छोड़ी कऽ चल्लो गेलो, हम्में अबे केना कऽ जीबो.....!

पिताजी की मृत्यु के महीनों बाद तक माँ, जहाँ भी सूना पाती, घर, बाड़ी, आँगन में बैठकर मनभर रो लेती, जिस कुर्सी पर पिताजी बैठते रहते थे, उसे भी पकड़कर रोती, उनकी किताबों के रैक में भी माथा पटककर

रोती। उनकी बनाई टँगी तस्वीरों को भी निहारती रहती।

माँ पिताजी की रोज के इस्तेमाल की चीजें और उनकी लिखी चिट्ठियाँ धरोहर रूप में बड़ी हिफाजत से अपने सन्दूक में रखी थी। मैंने कई दोपहरी देखा, माँ उन सारी चीजों को उठा ललाट में सटा आँखें बंद कर लेती थी, फिर रख देती थी, चिट्ठियों को भी खोलती और पढ़ती थी और चिट्ठियों के नीचे लिखा 'तुम्हारा परदेशी' पर क्षणभर आँखें टिकाये देखती थी।

बाबूजी के बाद माँ की धरोहरों में था एक बक्सा, जो पिताजी ने लाकर दिया था। एक सन्दूक जो माँ ने खुद बनवाया था और काठ का छोटा आलमीरा, जिसे नाना ने लाकर दिया था। उस जमाने में महिला को एक सन्दूक का होना अहम् बात होती थी बड़े अरमान के तहत अनेक सपनों को संजोए औरतें सन्दूक बनवाती थीं। माँ ने भी अपने अरमानों के तहत अपना संदूक मिस्त्री के पास बैठकर फूल जड़ा कई खानों के साथ बनवायी थीं, जिसमें माँ की सारी पूँजी ही नहीं, उनका मुठिया चावल भी लग गया था। इस संदूक में ही माँ के अरमान और धरोहर सुरक्षित थे, उनके मायके की भी कुछ यादगारें उसमें सुरक्षित थीं।

बाबूजी की पहली नौकरी कलकत्ता में एक मध्य विद्यालय में प्रधानाध्यापक के रूप में हुई थी। फिर सासाराम के जिला स्कूल में शिक्षक थे। माँ ने बाबू जी से संबंधित एक अजीबोगरीब दास्तान सुनायी थी। वह कहती थी कि एक बार जब बाबूजी सासाराम से आ रहे थे, जब अगले स्टेशन में गाड़ी रुकी, तो एक लंबे–चौड़े व्यक्ति ने उन्हें प्लेटफॉर्म से गौर से देखा और दूसरे ही क्षण भैया–भैया कहते हुए उनके पास तेजी से आये और पैर पकड़ते हुए कहा—आप मेरे बड़े भाई हैं और पूर्वजन्म की कहानी सुनाने लगे, फिर अति विह्वल हो, विनती करते हुए बाबूजी को गाड़ी से उतारकर अपने घर ले गये, जहाँ औरतों ने आरती उतारी और काफी सेवा–सत्कार हुआ। दो दिनों तक उन्हें रोके रखा गया और विदाई दी गई। यह जुड़ाव दोनों भाइयों का वर्षों चलता रहा। माँ इस दास्तान को कल्पना लोक में खोती हुई, बड़ी गंभीरता से कहती थी।

उस जमाने में सौ साल पहले रेलगाड़ियाँ बहुत कम थीं, कलकत्ता व सासाराम से मात्र एक पैसेंजर गाड़ी थी, जो भागलपुर आती थी। लोगों का आना–जाना भी कम ही होता था।, संवादहीनता की स्थिति में लोग जीते थे। चिट्ठियाँ एकमात्र साधन थी, वह भी गाँव–घरों में बहुत देर से पहुँचती थी। पोस्टमैन का बड़ा महत्त्व था, वह भावनाओं और संवेदनाओं का दूत था, जब उनके चिट्ठी बाँटने का समय आता, तो न जाने कितनों की उनकी राह में आँखें बिछी रहती, नवेलियाँ तो अपने परदेशी की चिट्ठी के इंतजार में विह्वल रहतीं। माँ कहती थी–तुम्हारे पिताजी की चिट्ठी हर माह के आखिरी सप्ताह में आ जाती थी। जबतक चिट्ठी न पहुँचती मैं दरवाजे से लगी रहती। और वे तो दो–तीन माह में आ पाते थे। उन दिनों चिट्ठियों में ही सारे सपने, अरमानें, आकांक्षाएँ और कल्पनाएँ सिमटी रहती थीं। इंतजार की घड़ियाँ वहीं विराम लेती थी और जीने का सिलसिला फिर एक नये आयाम में शुरू हो जाता था। चिट्ठी की बात पर माँ की आँखों में एक सुनहली दुनिया उभर आती थी।

बाबूजी के मृत्यूपरांत मैंने कई बार देखा था कि माँ उन चिट्ठियों को काँपती उंगलियों से निकाल पढ़ा करती थी, फिर बड़ी हिफाजत से उसे रखती हुई, हाथ जोड़ लेती थी। माँ मुझे उन चिट्ठियों को छूने नहीं देती थी। फिर कभी–कभी देख लेता, चिट्ठी के नीचे लिखा–तुम्हारा परदेशी। ये दो शब्द पता नहीं क्यों, अब जब माँ नहीं रहीं, याद आते ही झकझोर देती है। बाबूजी की दुनिया और माँ के दर्द का जुड़ाव साथ–साथ गहरा जाता है और उनकी यादें आने लगती हैं।

बाबूजी के देहांत के कई माह बाद माँ के चाचा, जो यायावरी के फकीरी जीवन जीते थे, उन्हें कहीं से पता चला था कि मेहमान का देहांत हो गया है, तो खोजते–ढूँढ़ते घर पर आये थे और दरवाजे पर रखी चौकी पर चुपचाप बैठे थे, पास में एक झोला था, जिसमें शकरकंद था। उन्हें याद था कि भागो बिटिया बचपन में शकरकंद खूब खाती थी, फिर खाली हाथ भी कैसे आते। पचास वर्ष का प्रेम, स्नेह, अपनत्व व दर्द उमड़ आया था, पुरानी बातें झकझोर रही थीं। दरवाजा सूना–सूना और भाँय–भाँय था। पचास वर्ष बाद भतीजी को देखने का एक आंतरिक ज्वार उमड़ रहा था। घंटे–भर वे चुपचाप बैठे रहे। शाम में जब माँ दरवाजे पर दीप दिखाने आई, तो उनको उत्सुकतावश पूछी–आप कौन हैं बाबा? नानाजी ने पूछा–क्या रमाशीष बाबू का घर यही है। हाँ, बाबा! आप हैं कौन? मैं श्यामल हूँ, भागो के चाचा, जरा भागो को सूचना दे दीजिए ना। यह सुनते ही माँ बेहतासा दौड़ती हुई उनसे लिपट रोने लगी। नाना भी खूब रोये। दोनों के आँसू बचपन से आजतक के जीवन में मिल दर्दनाक हो बह चले। घर के सारे लोग रोने की आवाज सुन आ खड़े हुए। फिर घंटों सुख–दुःख की बीती बातें होती रही। माँ ने उन्हें सप्ताह भर रोके रखा, उनके सेवा–सत्कार में हार्दिक सुख मिल रहा था, लगता था मायके लौट आया है।

नाना जब जाने लगे, तो माँ पैर पकड़कर खूब रोई थी, लग रहा था कि उन्हें फिर मायके की बात खत्म हो गई। माँ ने उनसे आते रहने की विनती की और काँपते हाथों से उनके झोले में एक जोड़ी धोती, जो टपके आँसुओं से भींग गये थे डाल दी और उन्हें जाते निहारती रही, जबतक वे आँखों से ओझल न हो गये। फिर नानाजी कभी न आये, पता नहीं चला कि उनका यायावरी जीवन फिर कहाँ समा गया जिंदगी की धुंध में। दो साल बाद किसी ने माँ को कहा था–कलबलिया घाट पर श्यामल का एक झोला फेंका हुआ मिला था, जिसमें दो फटी धोतियाँ, एक गमछा, एक सत्तू की पोटली थी, पर श्यामल न मिला। नाना के यायावरी के जीवन का रहस्य यह था कि इनकी पत्नी और इकलौती बेटी–दोनों अकाल मृत्यु में समा गई थी, एक चक्रवाती तूफान का झोंका इनके घोंसले के सारे तिनके उड़ा ले गया था, बिना घोंसले के यह पक्षी दिशाहीन हो यायावरी जीवन में डालियाँ बदलता ऊँघता रहता और गाता चलता—

''मरनो भलो विदेश में जहाँ न आपनो कोय।
माटी खाय जनावरा महा महोच्छ होय।।''

माँ अब बीमार रहने लगी थी और वह दुःखद दिन भी आ गया, जब पिताजी की मृत्यु के 15 साल के वैधव्य जीवन के खंडित काल को भोगती वह 14 अगस्त, 1993 को इस दुनिया को छोड़ चल दी। माँ का सब कुछ रह गया, पर वह न रही। घने वृक्ष की डाली पर तिनके–तिनके चुनकर लाये गये, बनाए घोंसला से चिड़िया फुर्र हो क्षितिज के अनंत धुंध में समा गई, फिर कभी वापस न आने को। सब कुछ भाँय–भाँय, पतझड़ की एक सूनी दोपहरी और अंदर समाकर बैठा एक सूना आकाश अपना विस्तार पा रहा था। ऐसे ही बेहद गमगीन हृदयविदारक माहौल में बजनियाँ गा रहा था–

''बड़ी रे जतन सँ ये सुगना एक हे पोसलों
कंचन दुध ये पिलाय।
सेहो रे सुगनमा आकाश उड़ि हे गइलै,
पिंजड़ा हे मोरा ओसरा लोटाय।
काँचहि बाँस केरो डोलिया रे बनैलियै
अखरा ही मूंज केर डोर।
भाई रे भतीजा मिली बनलै कहरिया
लै रे चललै सरयू किनार।''

निर्गुण के पदों के ये निर्वेद भाव अंदर समाकर जीवन को एक टीस

दे रहा था। चिड़िया उड़ गई, अपने चुने तिनकों से निर्मित घोंसले से और छोड़ गई उन तिनकों में अपने अरमानों के दंश, परिजनों को बेधती।

सभी बेटियाँ, पतोहू और बेटे आ चुके थे, गम के इस परिवेश में सभी रोये थे, कुछ दहाड़ मारकर, कोई आँसू टपकाकर, कोई भीतर–ही–भीतर। पर इस बीच ही किसी ने माँ की बेसर और कर्णफूल निकाल लिये थे, कुछ पता न चला। रक्तसंबंध वाले तो गम में थे, पर पतोहुएँ एक दिन के बाद सामान्य हो, अपने–अपने दाव–पेंच में थीं। कोई आपसी ईर्ष्या व द्वेष की रोटियाँ सेंकने में लगी थी, कोई खर्च के मसले पर उलझ रही थी। उनमें अब माँ की बातें दूर थीं, वहाँ सबों की अपनी बातें आगे थीं।

माँ तो गुजर गईं, अब संवेदनाओं का नहीं, स्वार्थों की घृणित टकराहटें थीं, पर मैं अब भी देख रहा था, धरती पर लिटाये माँ के शव को, उनके संदूक, बक्से और आलमारी के पास और देखता ही रहा था अपने अनियंत्रित अश्रुधार के बीच। कितना फासला था, माँ के जीवनभर के अरमानों के संजोए उन सम्पत्तियों और माँ के बीच; सब कुछ ज्यों–का–त्यों था, पर माँ न थी। निर्गुण के बोल गूँजने लगे थे–

''न घर तेरा न घर मेरा, चिड़िया रैन बसेरा हो
कंकर चुनी चुनी महल बनाओल ....
ओहो रे महलिया आगी लागल हो राम!''

माँ अपने प्रवासी पतोहू के ही एक कमरे में रहती थी। अतः पतोहू आई थी, तो अपने उसी कमरे में ठहरी थी, पर इस माहौल में भी उसने चुपके माँ के संदूक को अनधिकृत रूप से खोला था और उनके धरोहरों के उपयोगी सामानों को निकाल, बाकी अनुपयोगी सामानों को तितर–बितर कर दी थी, जबकि माँ के सामानों, उनकी धरोहरों, उनकी सोच और संजोए संवेदना को देखने की आकांक्षा सबों में पल रही थी। नतीजतन अब उस संदूक में न माँ थी और न बाबूजी, संवेदनाओं के सारे तार, अरमानों की सारी बातें विलुप्त थीं, सन्दूक खाली पड़ा ढनढन था।

माँ कई बार अपनी बहुओं को कह चुकी थी–मैं संदूक में क्या रखी हूँ, मेरे जीवनभर किसी को देखने और जानने का हक नहीं है। मेरे मरने के बाद सब मिलकर खोलना और देखना, पर मेरी चिट्ठियाँ न पढ़ना, उन्हें मेरी चिता पर दे देना।

माँ के सन्दूक खोले गये थे, इस बात की जानकारी तो तब हुई, जब सफाई के क्रम में बाबूजी की लिखी चिट्ठियाँ कूड़े पर फड़फड़ा रही थी और खुली पाति में 'तेरा परदेशी' शब्द आँखों से ओझल न हो रहा था, साथ ही बाबूजी के चश्मे, नेल कटर, लाइटर सब फेंके पड़े थे, जिसे बच्चे उठा–उठाकर दिखा रहे थे। इस स्थिति को देखते ही संवेदनाएँ कराह उठी थीं। लगा माँ–बाबू जी के वजूद उपेक्षा का दंश भोगता हवा में उड़–फुड़ रहा है।

माँ जिन चिट्ठियों को अपने एकांत क्षणों में सन्दूक से निकाल बार–बार पढ़ा करती थी और बाबूजी के जिन सामानों को छू अप्रतिम सुख पाती, निहारती रहती थी। वे धरोहरें, वे स्मृतियाँ, जो हम सभी भाई–बहनों की ही नहीं, आनेवाली संततियों के भी भावनात्मक जीवन से जुड़ते, वे सारे गायब थे और कुछ कूड़े के ढेर पर पड़े थे और जब इन अवांछित कृत्यों की पड़ताल की गई तो सन्दूक भाँय–भाँय सूने पड़े थे।

इन संवेदनशील दुःखद कृत्यों को लेकर काफी नाराजगी व्यक्त की गई, पर करतूत वाले मौन साधे रहे और उन्होंने श्राद्ध कर्म में सम्मिलित होने आए अपने पिताजी को व्यंग्यात्मक शैली में विहँसते हुए कहा–'देखिये न बाबूजी, सब कहते हैं कि मेरे ससुर के चश्मे, नेलकटर, लाइटर आदि जो मेरी सास, खराब होने के बावजूद 15 वर्षों से संदूक में बंद रखी थी, कहते हैं–वे मेरे पिताजी की यादगारी थी।' इसपर उनके पिताजी ने भी मुस्कुराते हुए कहा–'ऐ छिया, कैसन लोग बिया।'

श्राद्धकर्म समापन होते ही सारे परिजन माँ को भूल गये विदा हो गये। घर सूना–सूना, भाँय–भाँय था। माँ के सन्दूक और खाट असुरक्षित रूप से बाहर कर दिये गये थे, जो धूप, हवा व पानी को भोग रहा था। घर में सिर्फ बड़े भाई का परिवार रहता था, सब बाहर थे। सालभर के बाद मैं घर आने पर जब माँ की खाट और सन्दूक को न देखा, तो पता चला कि बड़ी भाभी उसे चूल्हे के हवाले कर दी थी। माँ के संजोए अरमानों का उस घर में अब कुछ न बचा था। स्वार्थ की गर्हित सोच में सब जलकर राख हो गया था। एक नई दुनिया उनको भूलकर खड़ी थी।

लघुकथा :

प्रतिच्छवि

डा. अशोक गुजराती,
निहारिका ऐब्सोल्यूट, खारघर, नवी मुंबई
मो.: 9971744164.

मेरी कहानी 'उठे हुए हाथ' के नायक वर्मा जी ने आत्महत्या कर ली है– यह पता चलते ही दुखद, लेकिन भरपूर अहसास हुआ कि कहीं मैंने उनका चरित्र–चित्रण करने में कोई गलती तो नहीं कर दी थी?

बाबरी मस्जिद ढहाने के पश्चात् पूरे देश में दंगे भड़क उठे थे, उन्हीं आग की लपटों, एक–दूसरे की जान के दुश्मन बने लोगों, लुटपाट हत्याएँ करते गुंडों और शहर में फैले फसाद के बीच वर्मा जी अकेले निकल पड़े थे। जी हाँ, निकल पड़े थे निर्भय वर्मा जी नगर की सबसे बड़ी लाइब्रेरी की पुस्तकों को अग्नि में भस्म होने से बचाने के लिए। वे उस लाइब्रेरी के बरसों से सचिव ही नहीं थे, उनके कारण ही वहाँ हजारों दुर्लभ से दुर्लभ और नयी से नयी किताबें उपलब्ध हो पायी थीं।

उन्हीं वर्मा जी ने खुदकुशी कर ली, यह हकीकत थी। भला इतना साहसी, सुलझा हुआ बुद्धिजीवी यह कायराना हरकत कैसे कर पाया होगा... इसका जवाब भी मुझे जल्द ही मिल गया। वर्मा जी जितने हिम्मती थे, उतने ही संवेदनशील भी। अति भावनाप्रधान, उनके इसी आत्मीय पहलू ने ही उन्हें अपनी प्रिय पुस्तकों के लिए बेचैन जो कर दिया था।

वे कुछ वर्ष पूर्व ही सेवा निवृत्त हुए थे। ऐसे में निश्चित ही उनके किसी एकदम नजदीकी व्यक्ति ने उनका इस उम्र में घोर अपमान किया होगा, जिसे वे सह नहीं पाये होंगे... जिससे हम बेहद प्रेम करते हैं, उसकी अवहेलना बर्दाश्त करना बहुत मुश्किल होता है. उन आखिरी क्षणों में उनके भावुक दिल ने उनके निर्भीक मस्तिष्क को कर दिया होगा और....

कहानी

सुकून

डॉ. रंजना जायसवाल
लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही,
मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश, 231001

दिल्ली की उस हलचल भरी शाम में जब मैं अपने ऑफिस के केबिन में बैठा था, तभी सौरभ दरवाजा खटखटाते हुए भीतर आया। सधे हुए कदमों से जैसे हर रोज आता था; लेकिन आज उसकी आँखों में कुछ अलग था–एक थकान, एक बेचैनी और शायद कहीं भीतर बहुत गहरी ऊब।

सौरभ! पच्चीस–छब्बीस साल का सुंदर, सजीला बांका जवान... हमारी होटल चेन्स में वह दिल्ली ब्रांच का सबसे पसंदीदा लाइव गायक था। उसकी आवाज में एक अजीब सी कशिश थी जो किसी भी ग्राहक का दिन बेहतर कर देती थी। उन्हें पल–भर ठहरने को मजबूर कर देती। वो हर गाने को अपना गाना बना लेता, मानो बस वो गाना उसी के लिए ही लिखा गया हो।

चेहरे पर हमेशा एक हल्की–सी मुस्कान, पर न जाने क्यों इधर कुछ दिनों से वह अनमना–सा नजर आ रहा था। उसके भीतर शायद कुछ चल रहा था पर क्या? मैंने कई बार जानने की कोशिश की, पर वह टालता रहा। शायद हमारे रिश्ते में अभी वह बात नहीं आ पाई थी कि वह अपना दर्द मुझसे बाँट पाता।

शायद उसका कारण यह भी था कि मैं मेज के उस पार था और वह इस पार मतलब मैं उसका बॉस था। कहने को तो हम हमउम्र थे साथ–साथ कमरा शेयर किया करते थे। हमने लगभग एक साथ ही होटल ज्वाइन किया था, पर मेरे एक्सपीरियंस की वजह से मुझे होटल का मैनेजर बना दिया गया था। वक्त भी एक अजीब खेल खेल रहा था जो उसका शौक था, आज वह ही उसकी नौकरी की वजह बनी। होटल में कोई जगह खाली नहीं थी। दिल्ली जैसे शहर में अपने आपको जिंदा रखने के लिए कुछ ना कुछ तो करना ही था, सो वह रेस्टोरेंट में गायक के तौर पर वहाँ काम करने लगा।

अपने साजो–सामान के साथ वह रेस्टोरेंट के एक कोने में मध्यम रोशनी के बीच मधुर तान छेड़ता रहता। कुछ लोग नजर उठाकर एक पल उसकी ओर देखते और फिर अपनी दुनिया में व्यस्त हो जाते। हाथों में गिटार और सधी हुई आवाज के साथ वह घंटों गाने गाता रहता। कुछ दिनों से हमेशा मुस्कुराता हुआ चेहरा आजकल खुद से खफा–खफा–सा नजर आ रहा था। आज भी वह वैसा ही दिख रहा था।

''सर आपने बुलाया।''

मैंने उसे सामने पड़ी कुर्सी पर बैठने का इशारा किया।

''सौरभ तुम्हारे लिए ऑफर है।''

''ऑफर?''

उसकी आँखों में न जाने कितने प्रश्न उग आए थे।

''होटल की लखनऊ ब्रांच से कॉल आई थी। वहाँ का लाइव सिंगर बिना बताए नौकरी छोड़कर चला गया था। उन्हें तुरंत किसी की जरूरत है।''

सौरभ बड़े ध्यान से मेरी बातें सुन रहा था।

''सौरभ, क्या तुम लखनऊ जाना पसंद करोगे?''

जैसे किसी ने बुझते दीपक में अचानक से तेल डाल दिया हो। उसकी आँखों के भीतर दबी रोशनी एक पल में चमक उठी। उसने एक पल भी नहीं लगाया।

''श्योर सर... उसने धीमे पर दृढ़ स्वर में कहा।''

मुझे उम्मीद नहीं थी कि इतने बड़े बदलाव के लिए वह एक पल भी नहीं सोचेगा। मैं उससे अधिक उसके इस तेज फैसले से हैरान था। लोग छोटे शहरों से दिल्ली आने के लिए न जाने कितने पापड़ बेलते हैं और यहाँ सौरभ दिल्ली छोड़ने के लिए तैयार था।

''सोच कर जवाब दो, कोई जल्दी नहीं है–ऐसी फैसला हड़बड़ाहट में नहीं लिए जाते।''

मैंने उसे समझाने की कोशिश की। मेरा मन इस बात को मानने को तैयार नहीं था कि वह दिल्ली जैसे शहर को इतनी आसानी से कैसे छोड़ सकता है। शायद इसका कारण यह भी था कि दिल्ली जैसे शहर में एक अच्छा दोस्त, एक अच्छा हमदर्द मिलना मुश्किल है। मैं एक बहुत अच्छे दोस्त को अपने हाथ से जाने नहीं देना चाहता था।

पर मैं गलत था, वह जाना चाहता था इस शहर से... छोटे शहरों में लौटना, जैसे लोग समझते हैं, हमेशा पीछे की तरफ चलना नहीं होता। कभी–कभी वो आगे बढ़ने का सबसे ईमानदार रास्ता होता है।

दिल्ली शहर जहाँ आने के लिए लोग न जाने कितने सपने देखते हैं। सौरभ ने भी देखा था, पर वक्त के साथ धीरे–धीरे सौरभ के चेहरे की मुस्कुराहट दिल्ली की चहल–पहल में खो गई थी। यह शहर सपनों का शहर जरूर है, मगर भूतों के सपने यहाँ टूट भी जाते हैं। भीड़ में, धुएँ में और एक–दूसरे को पीछे छोड़ने की इस अंधी दौड़ में।

वह अक्सर कहा करता था–''सर, कभी–कभी लगता है कि मैं खिड़की खोलकर खुलकर साँस भी नहीं ले सकता। हवा में सिर्फ साँस नहीं घुटती सपनें भी घुट जातें हैं।''

धीरे–धीरे उसकी बातें शिकायतों में बदलने लगीं थीं। वह सिर्फ सुकून चाहता था–वही सुकून जो उसे कभी अपने गाँव की शामों में, अपनी माँ की रसोई की खुशबू में और अपने गिटार की सधी हुई तानों में मिला करता था। इसलिए शायद लखनऊ का नाम सुनते ही उसे लगा होगा कि यह ऑफर नहीं, कोई इशारा है ईश्वर का और शायद उसके उन अनकहे प्रश्नों का जवाब भी....

दिल्ली छोड़ना उसके लिए आसान नहीं था। पाँच सालों से वह इसी शहर में रह रहा था। मेट्रो की तेज रफ्तार, भीड़ भरी सड़कें, पुरानी गलियों का शोर–दिल्ली महज एक शहर नहीं था वह अब उसकी आदत बन चुका था।

रात को होटल से लौटकर वह अक्सर अपनी बालकनी में बैठ जाता। नीचे फ्लाईओवर के नीचे से गुजरती कारें, हॉर्न की गूंज और हल्की पर निरंतर चलती हवा–इन सबसे उसका एक रिश्ता बन चुका था। रिश्ते चाहे इंसानों से बने हों या शहरों से, तोड़ना मुश्किल ही होता है। पर वह जाने को तैयार था; क्योंकि कभी–कभी एक आवाज भीतर से आती है–अब बदलो, अब कहीं और चलो ....

और उसे वही आवाज पुकार रही थी और शायद उसने अपनी उस आवाज को सुन लिया था। उसे इस शहर से हमेशा एक बात की शिकायत रही पड़ोसी ही पड़ोसी को नहीं जानता। आज अगर उसे कुछ हो गया तो किसी को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। शायद इसी वजह से उसने गली के कुत्तों से दोस्ती कर ली थी। वह रोज बिना नागा उन्हें रोटी–बिस्किट देता। वह कुत्ते भी तो उससे कितना प्यार करते थे बिना किसी स्वार्थ के.....

सौरभ जब इस शहर से जाने लगा, तो उसने पलट कर अपनी बिल्डिंग पर एक भरपूर नजर डाली। ईंट और कंक्रीटों से बने जंगल उसे भावशून्य होकर देख रहे थे, उसने सौरभ से कोई रिश्ता नहीं रखा था ठीक वैसे ही जैसे इस बिल्डिंग के हर फ्लोर पर बने घरों में रहने वाले लोगों की तरह... पर गली के कुत्ते उसके पीछे–पीछे चौराहे तक आ गए थे रोज की तरह... सौरभ ने उन्हें पुचकारा–दुलारा और मन–ही–मन कहा–''दोस्तो! चलता हूँ फिर मिलूँगा।'' होटल जाते वक्त वह रोज उनसे यही तो कहता था अपने इन मासूम दोस्तों से, पर आज वह उनसे यह नहीं कहा पाया था–वह जा रहा था, कभी भी इस शहर में ना लौटने के लिए... कहने को तो यह शहर लोगों से भरा हुआ था पर सच कहूँ तो था बिल्कुल वीराना...

सौरभ शायद वह कुछ भी नहीं सोचना चाहता था, इसीलिए उसने लखनऊ के लिए रात की ट्रेन पकड़ ली थी, जिससे सिर्फ उसका दिमाग ही नहीं मन और भाव भी शून्य में चले जाए। प्लेटफार्म पर लोगों की रेलम–पेल मची हुई थी। कभी–कभी वह सोचकर मुस्कुरा देता। रेलवे स्टेशन, बस स्टेशन, अस्पताल कहीं भी चले जाओ, लगता है हर इंसान एक यात्रा पर है, सबको जल्दी है अपने गंतव्य पर पहुंच जाने की, पर शायद कोई ऐसा इंसान होगा, जिसकी यात्रा कभी पूरी हो पाती होगी, बल्कि वह उसे गंतव्य पर पहुँचाकर एक और यात्रा की ओर निकल पड़ता है। सौरभ भी तो दिल्ली को छोड़ एक नए गंतव्य एक नई यात्रा की ओर आगे बढ़ गया था।

ट्रेन में उसने पूरी रात नींद और बेचैनी के बीच काट दी। सुबह जब 'चाय–चाय–चाय' की आवाज ने उसे चौंकाया, ट्रेन लखनऊ के प्लेटफॉर्म पर लग रही थी। नीले इलेक्ट्रॉनिक बोर्ड पर चमक रहा था।

''लखनऊ जंक्शन...''

उसने गहरी साँस ली। यह शहर उसके लिए नया था, पर अजनबी बिल्कुल नहीं। वह प्लेटफॉर्म से निकलकर टैक्सी की
ओर बढ़ा। रास्ते में सबसे पहले जिस चीज पर उसकी नजर पड़ी, वह थी लखनऊ के जीवन की धीमी रफ्तार। जहाँ दिल्ली में हर चेहरा जल्दबाज और तनाव से भरा लगता था, वहीं लखनऊ के चेहरे नरम थे–जैसे किसी ने उन पर तहजीब की चादर ओढ़ा दी हो। तभी लखनऊ की पहचान पीली और काली रंग की टेंपो धड़–धड़ाती हुई उसके सामने से गुजर गई। साथ ही टेंपो के पीछे लिखा एक वाक्य उसकी आँखों के सामने से गुजर गया...

''मुस्कुराइए, कि आप लखनऊ में हैं।''

सौरभ हँस पड़ा। शहर ने मानो आते ही उसका स्वागत कर दिया था। होटल की तरफ से उसे इंदिरा नगर इलाके में एक मकान मिल गया था। उसने अपना सामान जमाया और बालकनी में आकर खड़ा हो गया। तभी दरवाजे की घंटी बजी, वह चौक गया। उसने अपने आप से कहा–इस शहर में तो उसे कोई जानता भी नहीं है, फिर यह घंटी कैसी...? उसने दरवाजा खोला, 50–55 साल की एक अधेड़ महिला हाथ में ट्रे लिए खड़ी थी।

''नए आए हो?''

''जी...''

सौरभ ने संक्षिप्त जवाब दिया

''क्या नाम है बेटा?''

''सौरभ, सौरभ सिंह...''

''मैं तुम्हारे पड़ोस में ही रहती हूँ। सफर से थके हुए लग रहे हो, यह चाय पी लो कोई जरूरत हो तो बता देना।''

वह आश्चर्य में था, पड़ोसी ऐसे भी हो सकते हैं दिल्ली की भाग–दौड़ में वह यह कब का भूल चुका था। छोटे शहरों की यही तो खासियत है, जो आज भी आधुनिकता के दौड़ में बची हुई है। शाम से होटल की ज्वाइनिंग थी। होटल ज्वाइन करने से पहले उसने शहर को थोड़ा महसूस करने का फैसला किया। उसने जल्दी से नहाया और बाजार खुलने का इंतजार करने लगा। आखिर अब उसे इसी शहर में रहना था। गृहस्थी तो बसानी ही होगी, उसने अपने आप से कहा... घर के ठीक सामने एक बड़ा सा पार्क था। दिल्ली जैसे शहर में ईंच–ईंच के लिए मारामारी है यहाँ इतना बड़ा पार्क देखकर वह आश्चर्य में था। बच्चे, बूढ़े, औरतें सब मॉर्निंग वॉक में व्यस्त थे। खिले–खिले से चेहरे देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ।

इस वक्त उसके पास करने के लिए कुछ भी नहीं था। उसने अपना गिटार उठाया और वह पार्क में जाकर एक सीमेंट की बेंच पर बैठ गया। हवा में मीठी ठंडक थी। पेड़ों की छाया धरती पर नक्शे बना रही थी।

उसने गिटार निकालकर तारों को कसना शुरू किया। उसने एक गहरी साँस ली और ताजी, स्वच्छ हवा अपने फेफड़ों में भर ली। कितने दिनों बाद, हाँ कितने दिनों बाद उसने इतनी गहरी साँस ली थी। उसने गिटार पर तान छेड़ी और आँखें बंद कर अपनी ही दुनिया में खो गया। काफी देर बाद उसने महसूस
किया–एक बुजुर्ग महिला उसकी बेंच के कोने में बैठकर उसे देख रही थीं।

''अच्छा बजाते हो बेटा।''

''थैंक यू आंटी।''

''पहले कभी नहीं देखा, नए आए हो क्या...?''

''जी आज सुबह ही आया हूँ दिल्ली से....

''कोई खास काम?''

''यहाँ एक होटल में मुझे सिंगिंग के लिए बुलाया गया है।''

सौरभ ने अपनी गिटार को एक तरफ रख दिया। इस अनजान शहर में किसी से बात करना इतना आसान होगा, उसने कभी सोचा नहीं था।

''सिर्फ फिल्मी गाने बजाते हो?''

''जी गाता भी हूँ।''

''अरे वाह, कॉलेज के टाइम पर मैं भी भरतखंडे संगीत संस्थान से गायन और सितार सीखती थी। सितार... सितार समझते हो ना, तुम्हारे गिटार के अब्बा–हुजूर।''

सौरभ खिलखिलाकर हँस पड़ा। आंटी भी उसकी हँसी में शामिल हो गईं।

''आंटी, आपका सेंस ऑफ ह्यूमर लाजवाब है।''

''और तुम हँसते हुए बहुत अच्छे लगते हो।''

बुजुर्ग महिला ने सौरभ के गालों पर पड़ते हुए गड्ढे की तरफ इशारा करते हुए कहा था

''जानता हूँ...''

''अच्छा कैसे?''

''सब कहते हैं।''

''सब मतलब!''

''जहाँ मैं काम करता था।''

आंटी ने हार नहीं मानी।

आंटी ने अपने झुर्रीदार चेहरे को हल्का–सा टेढ़ा करते हुए कहा

''मुझे लगा किसी लड़की ने....''

सौरभ खिलखिला कर हँस पड़ा। सौरभ को उस बुजुर्ग महिला से बात करते हुए बड़ा मजा आ रहा था शायद बहुत दिनों बाद कोई उससे इतनी बातें कर रहा था।

''आंटी आप बहुत मजेदार हैं।''

''जानती हूँ।''

''कैसे ?''

सौरभ ने आंटी की बूढ़ी हो चुकी आँखों में आँखें डाल कर कहा

''सब कहते हैं।''

सौरभ की भड़क अब खुल चुकी थी

''सब मतलब।''

सौरभ हल्का–सा मुस्कुरा दिया। इस मुस्कुराहट में कोई बोझ नहीं था। यह मुस्कुराहट उसके अंदर की थी। आंटी सौरभ का इशारा समझ चुकी थी। आंटी ने उसकी पीठ पर हल्की धौल लगाई।

''तुम भी कम नहीं हो, बड़े शरारती हो।''

सौरभ को वह महिला बिल्कुल अपनी दादी–जैसी लगीं– स्नेह से भरी, मजाकिया और बेहद गर्मजोशी वाली।

''अच्छा चलती हूँ, तुमसे मिलकर बहुत अच्छा लगा।''

उस बुजुर्ग महिला ने कहा–सौरभ आज बहुत खुश था। खुश रहने के लिए मानो उसे बहाना मिल गया था। यह शहर अचानक से उसे अच्छा लगने लगा था। शायद इसी अच्छाई को उसकी आँखें तलाश रही थी। वह सुकून

जिसकी तलाश में वह दिल्ली से इतनी दूर आ गया था, शायद उसे मिल गया था। धीरे–धीरे वह लखनऊ की आबो–हवा में खुशबू की तरह घुलने लगा था। सौरभ को अपने काम से बहुत प्रेम था, पर अब वह दीवानियत की हद तक अपने काम से प्रेम करने लगा था। उसकी आवाज के जादू का असर लोगों के सर चढ़कर बोलने लगा था।

कुँआर का महीना चढ़ गया था। हवा में एक हल्की–सी ठंडक महसूस होने लगी थी। यह ठंडक तन के साथ कहीं ना कहीं मन को भी सहला जा रही थी। रोज की तरह सौरभ अपने गिटार को लेकर पार्क में पहुँचा, तो आंटी उसका ही इंतजार कर रही थी।

"आज तुमने आने में बहुत देर कर दी। तुम्हारी तबीयत तो ठीक है ना..."

आंटी के स्वर में चिंता थी, आंटी के साथ एक अजीब–सा रिश्ता बन गया था।

''कल होटल में एक पार्टी थी। गाने का दौर जो शुरू हुआ खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा था। आने में देर हो गई, सुबह आँख देर से खुली।''

सौरभ ने जवाब दिया।

''अच्छा में चलती हूँ, कल से नवरात्रि शुरू हो रहे हैं। त्यौहार की तैयारी भी करनी है। कल फिर मिलेंगे।''

''नवरात्रि शुरू हो रही है।''

यह बात सौरभ के दिमाग में कहीं अटक गई।

''आपलोग नवरात्रि में क्या–क्या करते हैं?''

आंटी किसी सोच में डूब गई।

''पहले तो हमलोग काफी कुछ कर लेते थे, पर अब शरीर काम नहीं करता। नवरात्रि के नौ दिन हम एक–दूसरे के घर जाया करते थे। भजन–कीर्तन में नौ दिन कैसे बीत जाते थे, पता ही नहीं चलता था। इसी बहाने हम एक–दूसरे से मिल–जुल लेते थे। सबकी अपनी–अपनी गृहस्थी और जिम्मेदारियाँ हैं, पर अब बहुत मुश्किल हो गया है। बस घर में पूजा कर लेते हैं और माता रानी को याद कर लेते हैं।''

नवरात्रि... यह एक शब्द सौरभ के दिल में घर कर गया। नवरात्रि में क्या हो सकता है? वह बार–बार यही सोच रहा था कि क्या वह कुछ ऐसा नहीं कर सकता, जिससे आंटी के वह बीते हुए दिन वापस आ जाए, जो दिल से दिल को जोड़ दे। इसी बहाने लोगों का एक दूसरे से मिलना–जुलना भी हो जाएगा और माता रानी का भजन कीर्तन भी...

रात को जब वह होटल से अपने कमरे में वापस आया आंटी की कही हुई बात अभी भी उसके मन–मस्तिष्क में घूम रही थी और फिर अचानक, एक विचार उसके मन में ऐसे कौंधा।

''क्यों न इस शहर में भजन क्लबिंग शुरू की जाए?''

दिल्ली में वह अकसर देखता था कि कॉफी शॉप्स में, पार्कों में, या किसी कैफे में युवा लोग एक साथ बैठकर गिटार पर फिल्मी गाने गाते थे। वह सोच रहा था–क्या कुछ ऐसा नहीं सोचा जा सकता। क्यों न उसी ऊर्जा को भजनों में ढाला जाए? ईश्वर के गीत भी तो संगीत है–सुर और भावनाओं के साथ।

उसने रात में ही अपने साथी कलाकारों निखिल और शोभित को फोन किया और अपने आइडिया के बारे में बताया।

''वाह सौरभ! क्या आईडिया है। हम तुम्हारे साथ हैं।''

''थैंक यू दोस्तो, तो फिर कल मिलते हैं कॉलोनी वालों के लिए एक नए सरप्राइज के साथ....''

''बिल्कुल...''

उसने रात में ही आंटी को फोन घुमा दिया।

''इतनी रात में सब ठीक तो है ना...''

''आंटी! कल आप अपने दोस्तों को लेकर पार्क में जरूर आइएगा। आप सभी के लिए एक सरप्राइज है।''

''सरप्राइज!''

आंटी कुछ कहती उससे पहले ही सौरभ ने फोन काट दिया और सुबह होने का इंतजार करने लगा और आखिर वह सुबह आ गई। नवरात्रि का पहला दिन आंटी सचमुच अपने साथ कई बुजुर्ग महिलाओं को लेकर आई थी। शर्मा आंटी, शुक्ला आंटी. गुप्ता आंटी, चावला आंटी, खत्री आंटी, नए–पुराने चेहरे, एक–दूसरे को देख वह बहुत खुश थे। कितने दिनों बाद वे एक साथ थे।

भीड़ में कोई बोला–

''सौरभ बेटा, यहाँ बुलाया किसलिए है?''

सौरभ ने शरारती मुस्कान दी–

''बस दो मिनट और... पता चल जाएगा।''

निखिल ने पियानो सेट किया, शोभित ने अपना छोटा–सा पोर्टेबल ड्रम।

सौरभ ने गिटार हाथ में लिया और कहा–''आज नवरात्रि का पहला दिन है। तो माता रानी का एक जयकारा तो बनता है।''

बुजुर्ग आंटियों ने एक–दूसरे की तरफ देखा। आज के लड़के... और भजन...? पर माहौल ही कुछ ऐसा था कि किसी को अजीब नहीं लगा। सौरभ ने धीरे से कहा–

''आंटी, ईश्वर तो सबके हैं। वह उम्र, कपड़े या जेनरेशन से नहीं बँटते। वैसे संगीत भी नहीं।''

आंटियों ने सिर हिलाया–सही कहा था लड़के ने...

और फिर शुरू हुआ, भजनों का जादू पहले धीमे सुरों में फिर धीरे–धीरे सुरों की तानें बढ़ीं, आवाज बहने लगी, हवा गूंज उठी। नीले आसमान के नीचे, पुराने पेड़ों की छाँव में, खुली हवा में जब सौरभ की आवाज गूंजी, मानो ईश्वर जैसे स्वयं उतर आए हो। लोग मंत्रमुग्ध हो गए। कुछ बुजुर्ग अपनी आँखें बंद कर तपस्या की

मुद्रा में भजन सुन रहे थे। कुछ महिलाएँ धीरे–धीरे अपनी आवाज उसकी आवाज के साथ मिलाती रहीं। निखिल और शोभित ने ऐसा माहौल खड़ा किया कि पार्क मंदिर बन गया। दो घंटे कब निकल गए किसी को पता भी न चला। सब एक जगह ही बैठे रहे। सबकी आँखों में सुकून था, वह सुकून सौरभ की आँखों में भी था जो वह वर्षों से ढूँढता आया था।

प्रोग्राम खत्म हुआ तो तालियाँ बजीं–दिल से बजीं और बहुत देर तक बजती रही। सौरभ अपने स्थान पर थम कर रह गया। उसने पहली बार किसी शहर में तालियों के पीछे दिलों की धड़कन सुनी थी। आंटी उसके पास आई–

''बेटा, आज बहुत दिनों बाद मन को आत्मा को शांति मिली। ईश्वर करे तुम खूब उन्नति करो।''

सौरभ की आँखें नम हो गईं। उसे लगा–हाँ, यही तो सुकून था। जो दिल्ली की भीड़ में गुम हो गया था, वह लखनऊ के इस छोटे–से पार्क में उसे मिल गया।

सुकून, सौरभ जिस सुकून की तलाश में आया था जिसे ढूंढने के लिए वह इतनी दूर दिल्ली से आया था, शायद उसे मिल गया था। उसके कानों में अभी भी तालियों की आवाज गूंज रही थी उन बूढ़े और अकेले चेहरों के खिलखिले चेहरे अब भी उसकी आँखों के सामने मुस्कुरा रहे थे। दिल्ली की उस भीड़ में भी जहाँ वह अपने आपको अकेला महसूस करता था, आज वह भरा–भरा सा महसूस कर रहा था।

रात को कमरे में वापस आकर वह बड़ी देर तक छत को निहारता रहा। दिल्ली की चकाचौंध को छोड़कर आया था, पर यहाँ इस शांत शहर की हवा में उसे वह आवाज मिली, जो वह लंबे समय से सुनना चाहता था। वह सोच रहा था कभी–कभी सुकून बड़ी जगह पर नहीं मिलता। छोटी–सी बेंच पर बैठकर गिटार बजाते हुए भी मिल सकता है।

दिल्ली ने उसे मंच दिया था, मगर लखनऊ ने उसे लोग दिए थे जो तालियाँ दिल से बजाते हैं, जो दुआएँ नेमत की तरह देते हैं। सौरभ सोच रहा था– ''शायद मैं इसी तलाश में यहाँ आया था।''

कहानी

कुँवारा बाप

श्यामल बिहारी महतो
ग्राम मुंगो, पो. गुंजरडीह, थाना नावाडीह,
जिला बोकारो, झारखंड

अरे, सुना तुमने भौजी! भगोड़ा गोपलवा बाप बन गया..! आँगन में झाड़ू लगा रही पत्नी रधिया देवी ने पति सोहन बाबू की तरफ एक नजर देखा। पूछा–''किसने बताया कि वह बाप बन गया?''

''अजीब बात है। सारे गाँव में हल्ला है और तुम्हीं को पता नहीं है? इसी महीने के दस तारीख को देवर भगोड़ी ने एक बेटी को जन्म दी है..!''

''तो.. इसमें हंगामे जैसी क्या बात है? औरत ही न बच्चे को जन्म देती है, मर्द जन्म देता है क्या?''

''गजब बात करती है, वो औरत बिहायी थी, पर लड़का तो कुँवारा है।''

''हाँ, है तो..?''

''तो क्या लड़की कुँवारी माँ बनती, तो गाँव–समाज चुप रहता क्या? लड़की का जीना हराम कर देते।''

''हाँ, तो..?''

''भाँड़ में जाए ये तुम्हारा–हाँ तो।'' सोहन बाबू ने झुंझलाते हुए पत्नी से कहा और तौलिया–साबुन लिये वह बाँथरूम में जा घुसे थे।

इसी के साथ साल–भर पहले की घटना तरोताजा हो आई थी। एक शाम सगरो गाँव में ढिंढोरा–सा पिट गया था–''गोपला ने गणेशवा की बहू को ले भागा...!''

''सुना तुमने, भौजी देवरवा के साथ भाग गयी...!''

जिसने सुना, वहीं दोनों को गरियाते नजर आये–''छि–छि कैसन युग आ गया, बड़ो–छोटो का कोई ख्याल नाय..! औरतों को खुराक मिल गया।

''आज के लौंडा–छौंडा से इससे बेहतर उम्मीद नहीं कर सकते हो..!'' बूड़े कुढ़ने लगे।

''न रिश्तों की परवाह है, न लाज–लिहाज..!'' हर किसी का मुँह बजने लगा था।

खिसियायी सुशीला देवी कपार पर हाथ धरे आँगन में बैठी अपनी तकदीर को कोसने लगी–''भतार भी ढंग का नहीं मिला, बेटा भी उसी के रंग निकला..!''

सुशीला देवी गाँव के आदर्श आँगनबाड़ी केन्द्र में बच्चों को आदर्श की पाठ पढ़ाती थी। गाँव में लोग उसे मास्टरनी कहा करते हैं थे। भारी भरकम शरीर की मालकिन सुशीला देवी को फाड़ देने से पैंतीस–पैंतीस की दो औरतें निकल आती। उसी को उसके छोटे बेटे ने उसके जीवन का जैसे दो फाड़ कर दिया था। उसके बाद गाँव में जो दुर्गन्ध फैली वो गूह मुँह होने जैसा था।

सुशीला देवी बहुत ही संस्कारी महिला थी। प्यार–दुलार के साथ उसकी माँ ने बचपन में ही उसे संस्कार की जन्मघुटी पीला दी थी, लेकिन वही जन्मघुटी सुशीला देवी अपने दोनों बेटों को पिलाने में नाकाम रही थी। अगर पिला पाती तो जीवन का ऐसा कचरापन उसे देखना नहीं पड़ता।

घर में क्या हो रहा है, गाँव में क्या हो रहा है, कौन क्या कर रहा है, उसके पति मालचंद महतो का उससे कोई मतलब नहीं था और न पत्नी से कोई मतलब था ,न उसके प्यार से कोई वास्ता था। न बेटों के भविष्य को लेकर उसके दिमाग में कोई योजना थी, न उन दोनों की पढ़ाई से भी उसका कोई सरोकार, कोई लेना देना था। उनकी अनुपस्थिति में दोनों बेटे जैसे–तैसे बढ़ रहे थे, पढ़ रहे थे और वह गोमिया प्रखण्ड में एक सरकारी कर्मचारी के रूप में पैसे बटोर रहे थे, कहें तो पैसे पीट रहा था। एक बार महीने में घर आने की बात कहने पर पत्नी को एड़े–मुक्के मार कर बुरी तरह घायल कर दिया था। उसके गुप्तांग को सूजा देख डॉक्टर मीरा जैन ने गुस्से में कहा था–वह आदमी है कि कोई दरिंदा पत्नी को इतनी बेरहमी से कोई पीटता है क्या..?

उस दिन के बाद सुशीला देवी ने पति के साथ कोई समझौता नहीं की और अपनी जिंदगी अपने ढंग जीने का फैसला कर लिया। आंगनबाड़ी उसके जीवन का केंद्र बन गया।

यद्यपि जबतक जिये जिन्दगी में सुशीला देवी कभी सकून के दो पल नहीं जी पाई थी। वो समझ नहीं पा रही थी कि उसके जीवन में इतना उठा–पटक क्यों है? बड़ा बेटा गणेश आँख चिपता हुआ पैदा हुआ था। वह हमेशा आँख चिपता रहता। शरीर बाप–सा काला और चूल भालू–सा। शक्ल में भी और अक्ल से भी बाप जैसा। पैदा भी हुआ था विचित्र स्वभाव का। बचपन में तो प्रायः सभी बच्चे घिसिर–घिसिर कर चलते हैं; लेकिन गणेश पेट के बल पर चलता था। जहाँ बैठता उसी दिशा में लंबे समय तक टकटकी लगाये देखता रहता था। बोलता कम और खाता ज्यादा। गोबर गणेश जैसा। ठीक उसके विपरीत सुशीला देवी का छोटा बेटा गोपाल पैदा हुआ था। पर यह भी शक्ल में बाप पर गया था; लेकिन अक्ल उसने बाप से तेज पाया था। बचपन में ही औरतों की साडियाँ खींचना जैसे पेट से ही सीख कर आया था। जब वह सात–आठ साल का था, तभी उसने एक दिन साड़ी खींचकर माँ को ही नंगी कर दिया था। माँ को लगा था बेटा शरारत कर रहा है, लेकिन जब पूरी तरह नंगी हो गई, तो बेटे को जोर का थप्पड़ मार दी–''बाप जैसा बनेगा क्या तू भी?''

सुशीला देवी पति भालचंद को भी कहाँ समझ पाई थी। जब घर आता, पूरा जानवर बना हुआ होता। आते ही सुशीला देवी पर अय्यास की तरह टूट पड़ता। न दिन देखता, न रात; न घर देखता और न आँगन। पत्नी की शरीर को नोचना शुरू कर देता। बड़े हो रहे बच्चों तक नजर अंदाज कर दिया जाता था। एक दिन भालचंद ने घर में कदम रखते ही आँगन में बाल सँवार रही सुशीला देवी को पीछे से दबोच लिया और आगा–पीछा देखे बगैर सर्रर से साड़ी खींच कर पत्नी को नंगा कर दिया और उसी तरह उठा कर सीधे अंदर बिस्तर पर ले गया था। यह सब गोपाल ने अपनी चंचल आँखों से भरा पूरा रूप में देखा। तब वह आँगन के एक कोने में बैठा लुट्टू खेल रहा था।

वही गोपाल बचपन से ही औरतों के साथ लुकाछिपी खेलना शुरू कर दिया था। नहाती हुई औरतों को दीवार के पीछे से छिपकर देखना, लघु शंका कर रही को टकटकी लगाये देखना, गोपाल ने पैदा होते ही जैसे सीख लिया था। पर सुशीला देवी को यह बच्चों का बचकाना से ज्यादा कुछ नहीं लगता ।''बच्चे बचपन में ऐसी शरारतें करते ही हैं। किसी को उल्हाने की जवाब में वह कहा करती थी।

उधर गोपाल जैसे–जैसे बड़ा होता गया, उनकी हरकतों के पाँव भी बड़े होते चले गये थे। अब उसे जब मौका मिलता, औरतों की जमात में घुस जाता और उनकी बातों को बड़ा गौर से सुनता। कभी कभी औरतें

उसे डाँट कर भगा देती–''चल भाग यहाँ से, हमारी बात क्या सुनता है। जनीमेहरा (चुपके–चुपके औरतों की बात सुनने वाला) कहीं के..!'' वह उठकर थोड़ी दूर जाता, फिर लौट आ चुपके से किसी के पीछे चिपक जाता। उसे देख मुझे अपने बचपन के दोस्त दौलत की याद आ रही थी।''पक्का जनीमेहरा है!'' औरतों ने उसे उपाधि दे रखी थी। वह भी अक्सर औरतों की भीड़ में पाया जाता था। अब इस दुनिया में नहीं रहा।

इधर गणेश सोलह साल की उम्र में भी वैसा–का–वैसा ही था। शरीर से बड़ा हो गया था; लेकिन हुलकने का भाव अंदाज वही था बचपन वाला। बोर्ड परीक्षा में गांधी डिवीजन से उसने पास किया था इसी साल। पर घर में किसी ने उसे बधाई तक नहीं दी। माँ ने कहीं से आधा किलो लड्डू लाकर दी और कहा–बाँट दो अपने दोस्तों के बीच, ताकि सबको पता चल जाए कि तू पास कर गया है..!

उसने वही किया; परन्तु यहाँ भी किसी दोस्त ने उसे बधाई नहीं दी थी। उसने बुरा नहीं माना। बाद में बकरियों को लेकर जंगल की ओर निकल पड़ा था। बकरियाँ चराना उसका रोज का काम था। दो साल बाद सुशीला देवी के दूसरे बेटे गोपाल ने बोर्ड परीक्षा दी। बाप के डिवीजन मार्क से पास किया। बाप भालचंद सेकेंड होल्डर था। इस रिजल्ट के बाद गोपाल का एक और रिजल्ट सामने आया–लड़की अगवा करने का।

विमला कुमारी पड़ोस गाँव की थी। नावाडीह हाई स्कूल में नवमी की छात्रा थी। हर दिन पैदल स्कूल आती–जाती थी। सुनसान तेतरिया मोड़ में एक दिन गोपाल ने उसे उठा लिया। सोचा था कि यह भी मान जायेगी, जैसे पहले की दो लड़कियाँ मोबाइल रिचार्ज के पैसे लेकर मान गयी थीं; लेकिन विमला नहीं
मानी, उसने बवाल मचा दी। पड़ोसी गाँव में खूब हल्ला मचा। लड़कों ने गोपाल को खूब दौड़ाया। दस बजे रात वह पकड़ में आया। दोनों गाँव के बीच चबूतरा पर पंचायत बैठी। गोपाल का बाप भालू की तरह पंचायत में आकर खड़ा हो गया। जहाँ गोपाल की माँ सुशीला देवी ने पंचायत में अपनी बात रखी–''मैं लड़की को अपने घर की बहू बनाने को तैयार हूँ..!''

लड़की के बाप ने एतराज किया। कहा–''मेरी लड़की अभी नाबालिग है और फिर इस म्लेच्छ से कौन अपनी बेटी का ब्याह दे। इसे पुलिस के हवाले कर देना चाहिए, ताकि फिर वह गंदी हरकत न करे..!''

इसके बाद बड़ी देर तक पंचायत शोरगुल में डूबा रहा। ''हम किसी के भविष्य को बर्बाद करना नहीं चाहते हैं, उसी बीच मुखिया ने हस्तक्षेप करते हुए कहा–इसकी पहली गलती समझ माफ किया जा सकता है; लेकिन फिर दोबारा ऐसा हुआ तो सीधे पुलिस के हवाले कर दिया जायेगा..।

सुशीला देवी को समझ में आ चुका था। छोटा बेटा बुरी तरह बिगड़ चुका है। उसे सुधारना उसके बस की बात नहीं है। तभी उसका ध्यान बड़े बेटे गणेश की ओर गया। वह इक्कीस साल का हो चुका था। एक दिन उसने गणेश से कहा–''मैं तुम्हारी शादी कर देना चाहती हूँ..!''

गणेश बहुत कम बोलता था। तब भी उसने कम ही बोला–''कर दो, तुम्हारे कामों में मदद कर देगी..!'' पर गणेश की शादी, सुशीला देवी के जीवन में बड़ा ही बुरा और –गुड़ गोबर करने वाला साबित हुआ!''मास्टरनी, मरते दम तक इसे भूला नहीं पायेगी।'' ऐसा लोगों का मानना था और इसका कारण बना
कौन, वही कपूत बेटा गोपाल!

आषाढ़ माह गणेश की शादी पड़ोसी गाँव के दीनबंधु महतो की बेटी सुमित्रा कुमारी के साथ सामाजिक रीति–रिवाज से कर दी गई। इस शादी में सुमित्रा खुश नहीं थी। उसे गणेश पसंद नहीं था।

माँ–बाप ने समझाया–''बिना तिलक दहेज के आज कल कौन लड़का शादी करता है..?'' बोलो। इस तरह माँ–बाप के दबाव के आगे उसे झुकना पड़ा था। सुमित्रा थोड़ी चंचल स्वभाव की तो थी ही, आजाद ख्याल की भी थी। चटर–पटर खाने और अच्छे कपड़े पहनने का शौक भी रखती थी; लेकिन
अभाव ने उसके हाथ–पैर बाँध रखे थे। शादी होते ही उनकी दबी आकाक्षांओं ने जोर मारना शुरू कर दिया था। हर दिन पति के सामने नयी–नयी फरमाइश करने लगी। गणेश कुछ ला देता, कुछ नहीं ला पाता। सुमित्रा उल्हाना देने लगती–''कैसन मरद हो, आपन पत्नी की इच्छा पूरी नहीं कर पाते हो..?'' और रूठ जाती
थी। गणेश उसको उसी हाल में छोड़ बकरियों को लिए जंगल की ओर निकल जाता। तब यही गोपाल भाभी की बाकी इच्छाओं को लाकर पूरी कर देता और कहता–''लाकर तो दे रहा हूँ। पर देवर हूँ, पति मत समझ लेना..!

''लाकर दे तो रहे हो, पर भाभी हूँ, पत्नी मत समझ लेना..! सुमित्रा हँस कर जवाब देती। इस तरह की बातें उस घर की दीवारों से हर दिन टकराने लगी थीं। जो सुमित्रा इस शादी से नाराज थी। वही गोपाल का सान्निध्य पाकर सूर्यमुखी लगने लगी थी। वक्त दबे पाँव आगे बढ़ता रहा। देवर–भाभी की युगल जोड़ी से घर का कोना–कोना खिलखिलाने लगा। सुमित्रा भूल चुकी थी कि गोपाल उसका मरद नहीं, बल्कि देवर है। हर वक्त उसी के बारे सोचती रहती थी। सुशीला देवी को अच्छा भी लगता और नहीं भी लगता–''देवर–भाभी में इतना सब कुछ तो होता है!'' वह सोचती थी।।

सुमित्रा करमा पर्व में नैहर गयी थी। दस दिन रही। सुशीला देवी ने गणेश को उसे लाने भेजा। सुमित्रा ने आने से मना कर दी। गणेश लौट आया। उल्टे सुमित्रा ने गोपाल को अपने पास बुला ली। गोपाल पंद्रह दिन सुमित्रा के साथ रहा। सोलहवें दिन गोपाल के साथ ससुराल चली आई; परन्तु रात को वह गणेश के कमरे में जाने की वजाय गोपाल के कमरे में घुस गयी और अंदर से हुडकी (कुण्डी) लगा दी। सुबह सुशीला देवी ने उसे बहुत खरी–खोटी सुनाई तुम्हारा मरद गोपाल नहीं, गणेश है, यह लक्षण ठीक नहीं है, लोग सुनेंगे तो थूकेंगे तुम पर। मरद बदनाम नहीं होता, औरतें बदनाम होती हैं..! और वह अपने आँगनबाड़ी चली गई।

शाम को सुशीला देवी लौटी, तो घर में न सुमित्रा मिली और न गोपाल मिला। आँगन में गणेश माटी की मूरत की भाँति एक कोने में लुटे–पिटे हालत में बैठा हुआ था। उसकी सुदामा हालत देख सुशीला देवी को उस पर बड़ा क्रोध आया। आगे बढ़कर उसने उसकी गाल पर एक जोरदार चाँटा जड़ दी। कहा–''तुम्हारी औरत किसी दूसरे मरद के साथ भाग गयी और तुम यहाँ माटी का माधव बना बैठा है। उसका हाथ–पैर नहीं तोड़ सका..!''

उधर गोपाल का फोन लगातार स्वीच आफ आ रहा था। सुशीला देवी आँगन में ही बड़बड़ाते हुए चक्कर काटने लगी वाह रे बेटा। बाप का जन्मघुटी तुमने भी पी ली..!

कहानी

सहमा हुआ सन्नाटा

शुभदा मिश्र
पटेलबाई, डोंगरगढ़ (छ.ग.)
मो.–8269594598

उस दिन विजया का फोन आया। कुशल समाचार बतियाने के बाद कहने लगी, मौसी एक समस्या हो गई है।

क्या?

बबलू भैया के आँख का ऑपरेशन है 'रामपुर एम्स में।' उसकी पत्नी साथ जायेगी। घर में मम्मी अकेले नहीं रह सकतीं। क्या आपके घर कुछ दिनों के लिए रह सकती हैं। रह तो सकती है, मगर एक दिक्कत है। तुम जानती हो, मेरा घर बहुत पुराना है। इसमें टॉयलेट भी पुराने जमाने का है। नीचे बैठने वाला। बूढ़े–पुराने लोगों को इसमें दिक्कत होती है। इसी से मेरी सहेलियाँ मेरे घर ठहरती नहीं। बस भेंटकर चली जाती हैं।

मौसी! मैं मम्मी से पूछकर बताती हूँ।

कुछ देर बाद विजया का फोन आया–मौसी! मम्मी कह रही है, मैं कर लूँगी।

बबलू कब जा रहा है?

मंगलवार को। उसे शक्कर की बीमारी है। कई तरह की समस्याएँ हैं। उसका इलाज चल रहा है। अभी सब तरह की जाँच करेंगे कि ऑपरेशन के लायक है कि नहीं। तब ऑपरेशन की तारीख देंगे। शनिवार को आ जायेगा बबलू।

ठीक है।

विजया कहने लगी–मौसी! मैं अपने घर रख सकती थी, पर अभी बहुत झंझट है। स्कूल रहता है मेरा सुबह दस बजे से शाम पाँच बजे तक। मुझे ही परिवार सँभालना। फिर मेरी बेटी की बोर्ड परीक्षा है। बहुत घबराई है, उसे सँभालना। बेटे की भी परीक्षा है। छोटी बहन जया, आप जानती है, सास–ससुर के साथ रहती है।

उसके बच्चे भी छोटे–छोटे हैं। हमलोगों ने बहुत सोचकर ही तय किया कि माँ को आपके घर रख सकते हैं। आप अकेली रहती हैं। आपको भी साथ मिल जायेगा। सहारा भी हो जायेगा। मम्मी! आप जानती हैं, बैठे–बैठे खानेवाली औरत नहीं है।

तुम्हारी माँ कुछ दिन रहे, स्वागत है। पर विजया मैं बता दूँ। मुझे अकेले रहना पसंद है। यह मेरा स्वभाव भी है और काम भी।

नहीं, मौसी! एक से भले दो। आपके घर में रौनक हो जायेगी।

अच्छा ठीक है, कहकर मैंने बात खत्म की।

सोच में पड़ गई मैं। पुराने जमाने का मेरा घर। था तो कभी शानदार बंगलानुमा गुलजार, पर अब तो खस्ताहाल है, वीरान–सा। माता–पिता परलोकवासी हुये। भाई–बहन परदेशवासी। उन्हें इस घर की खबर लेने की फुरसत नहीं। मैं अकेली। बैंक में जमा अपने कुछ पैसों के ब्याज पर गुजारा करनेवाली। मेरी भी उमर हो गई है। घुटने में दर्द, आँखों में धुंधलापन, कानों में सनसनाहट, दाँतों में तकलीफ। फिर अकेलेपन की अपनी समस्याएँ। पर यह सब मैं बढ़ती उम्र की सौगात मानती हूँ। स्वीकार करती हूँ हँसकर। लोग समझते हैं, इतने बड़े घर में मजे से रहती है अकेले। कई बार ऐसा हुआ है कि परिचित महिलाएँ अपने घर में लड़ाई– झगड़ा हो तो अपना बैग धरे चली आती थीं मेरे घर रहने। निकलने का नाम न लेती, जमीं रहतीं ठसके से। अपने बेटे–बहू पर घौंस जमाती। मुझे प्रेम दिखाती। बहुत मुश्किल होता ऐसों को निकालना। मगर कोई दुखिया बनी शरण माँगने आये, तो मना भी तो नहीं किया जाता मुझसे।

इस विजया की मम्मी को मैं जानती हूँ। कोई पचीस बरस पहले मैं भारी परेशानियों से घिर गई थी या तो मुझे मुकदमा लड़कर अपना हक लेना था या जीवकोपार्जन के लिए खुद ही कुछ करना था। पहली बात मेरे बस की नहीं थी, क्योंकि उस दुर्दिन में अपने–पराये सबने मुझे अकेले छोड़ दिया था। सो मैंने दूसरा तरीका अपनाया। अपना कंप्यूटर सेंटर खोला। वह सन् दो हजार था। यहाँ बहुत कम स्कूलों में कंप्यूटर कक्षाएँ थीं। सो छात्र मेरे 'कंप्यूटर केन्द्र' में आने लगे। मैं छात्रों को कंप्यूटर चलाना सिखाती और लोगों के कंप्यूटर सबंधित काम भी कर देती। रोजी–रोटी चलने लगी थी। तभी दो बहनें भी कंप्यूटर सीखने आने लगीं थीं–विजया और जया। इनमें बड़ी विजया काली, नाटी, सामान्य नाकनक्श की, तेज तर्रार, जबकि छोटी जया गोरी चिट्टी, छरहरी, अतीव सुंदरी, बेहद सीधी। दोनों 'बी.एससी., बी.एड्. थीं। नौकरी की तलाश कर रही थीं। घरवाले उनके लिए योग्यवरों की तलाश भी कर रहे थे। सो समय का सदुपयोग करने कंप्यूटर सीखने आने लगीं थीं। चूँकि तब छात्र कम थे, सो अक्सर उनसे गपशप भी हो जाती। युवा छात्रों की मुख्य समस्या बेकारी की थी, जबकि इन दो बहनों की मुख्य समस्या शादी की थी। ये दोनो बहनें खुलकर बोलने–बतियाने वाली थी। उनकी बातचीत से पता चलता, उनकी शादी नहीं हो पाने के कारण घर में सब परेशान हैं। विजया बड़ी है, पहले उसकी शादी होनी चाहिये। पर लड़के वाले जया को पसंद कर लेते हैं। सो जब लड़केवाले आते हैं, तो जया को कहीं छुपा दिया जाता है। घर के दुखड़े बतियाती, वे मेरे व्यक्तिगत कार्यों में मदद भी कर देतीं। बाजार से सामान तो ला ही देती, रसोई के कामों में भी मदद कर देतीं। उन्हीं दिनों उनका नया घर बना था। गृहप्रवेश के लिए मुझे निमंत्रित करने उनके माता–पिता स्वयं आये थे। पिता गहरे साँवले, मध्यम ऊँचाई, ढलता शरीर, देहाती नाकनक्श के। माँ भी मध्यम ऊँचाई की, खुलता रंग, सजी–सँवरी प्रौढ़ा सुंदरी। बातचीत में दोनों का अपने–अपने ढंग का गँवारूपन–सा। रही मैं। घर क्या जगरमगर करता शानदार बंगला। वैसा ही शानदार समारोह। शहर की नामी–गिरामी हस्तियाँ शोभा बढ़ा रही थीं। सबके बीच मुझे विशेष तवज्जो दी गई। पिता रेल्वे कर्मचारी थे, सो तो मालूम था। आज पता चला, अवकाश–प्राप्ति के समय 'मेलड्राईवर' थे। तीन बेटे हैं–प्रकाश, सुभाष और सुनील। सुनील को सब बबलू कहते हैं। तीनों दिखने में अच्छे हैं, व्यवहारकुशल भी। बड़ा प्रकाश तो दिखता ही प्रभावशाली है। तीनों स्थानीय कॉलेज में बी.ए. तक पढ़े हैं और अपना कारोबार देखते हैं। कारोबार है 'भवन–निर्माण' का। ईंटों के भट्टे हैं। लोहा, लक्कड़, सीमेंट के गोदाम हैं। ट्रकें, ट्रालियों, वाहन है। तीनों ने मुझे पैर छूकर प्रणाम किया। भेंट में मुझे सुंदर साड़ी दी गई। बेटे अपनी कार से मुझे घर छोड़ने आये। मुझे भी ऐसे हँसते–खेलते स्नेहिल परिवार से मिलकर अच्छा लगा।

विजया, जया का कंप्यूटर प्रशिक्षण तो खतम हो गया, पर वे बीच–बीच में मुझसे मिलने आती रहतीं। बातचीत में वही चिंता, घबराहट उमर बीतती जा रही है और किसी की शादी ही नहीं हो पा रही है। प्रकाश भैया के लिए लड़कीवाले आते हैं, पर वे कहते हैं कि विजया की शादी हो जाये, तब करेंगे शादी और विजया की शादी है कि लग ही नहीं रही। मगर दर्द कितना गहरा है, पता चला जब अचानक उनकी माँ से मुलाकात हो गई। हुआ यह कि मैं एक परिचित की शादी में गई थी। चारों ओर विवाह समारोह की चकाचौंध। जेवर–कपड़ों की चमक–दमक, व्यंजनों की महक। हँसी–ठहाकों की बौछार। भरपूर मौजमस्ती करते लोग। मगर एक कोने में कोई चुपचाप अकेला बैठा हुआ। पास जाकर देखा–अरे, यह तो विजया–जया की मम्मी। बगल की कुर्सी पर बैठ गई मैं। चुप भले थी वह। पर भीतर लावा भरा हुआ था। मुझे देखते ही फूट पड़ा बताइये, ये लता कौन–सी सुंदर है। मगर इसकी भी शादी हो रही है। मेरी विजया की उमर बढ़ती जा रही है। लड़केवाले आते हैं। खाते हैं, पीते हैं, इतना खर्चा कराते हैं। वापस जाकर मना कर देते हैं। बेचारी जया को मुझे बाथरूम में बंद रखना पड़ता है। कोई–कोई औरत तो इतनी दुष्ट जान–बूझकर भीतर जाती है। आकर पूछती है–आपलोगों ने वह बाथरूम क्यों बंद कर रखा है। छाती फटी जाती है। खून का घूँट पीकर हँसकर बतियाना पड़ता है कमीनों से। विजया का दिमाग इतना खराब रहता है कि जया को मारने–पीटने लगती है। विजया के कारण सबकी शादी रुकी हुई है, प्रकाश की, सुभाष की, जया की। पता नहीं मेरे घर कभी ब्याह–शादी की शहनाई बजेगी कि नहीं...!

गला रूँध गया, आँसू छलछलाने लगे। मैंने उनका सिर अपने कंधे से

चिपका लिया। सांत्वना देती रही–'हिम्मत मत हारिये बहन! सब समय की बात है। कई परिवारों में पहली शादी में बड़ी देर होती है। पहली शादी होने के बाद ऐसे धड़ाधड़ शादियाँ होने लगती हैं कि दम मारने की फुरसत नहीं। न हो तो पहले बेटे 'प्रकाश' की ही शादी कर दीजिये।

उस सांत्वना की बात उन्होंने घर में बताई होगी। बताई होगी कि मैंने उन्हें 'बहन' कहा। विजया–जया, अन्य छात्रों की तरह मुझे 'मैडम' कहती थी। उस दिन से वे मुझे 'मौसी' कहने लगी। उनके भाई भी।

उस दिन की चर्चा का असर था या क्या सच में प्रकाश की शादी तय हो गई। पता चला विजया ही अड़ गई, पहले प्रकाश भैया की ही शादी करो। आनन–फानन में उसने लड़की भी ढूंढ ली। लड़की सामान्य सुंदर ही है। अँग्रेजी में एम.ए. है। अपनी माँ के साथ रहती है। माँ तलाकशुदा है। सरकारी अस्पताल में काम करती है। यह माँ भी अपनी बूढ़ी माँ के साथ रहती है। घर उसकी बूढ़ी माँ का ही है। छोटा–सा पुराने समय का खपरैलों वाला। खस्ताहाल। कहाँ ये मम्मीजी बरसों से ख्वाब सँजोये थी कि उनके राजकुमार जैसे सुंदर बेटे का विवाह बहुत बड़े घर में हो। बहू परी–सी सुंदर हो। गहनों से लदी हो। खूब दान–दहेज लाये। मगर विजया अड़ गई कि गरीब घर की लड़की लाना अच्छा होता है। दबकर रहेगी। टूटे परिवार की है, सो परिवार जोड़कर रखेगी।

मगर ऐसा हुआ नहीं। शादी के बाद मैं उनके घर गई, तो घर एकदम उजाड़, वीरान–सा लगा। सभी के बेसूरत चेहरे। पता चला बहू तो प्रकाश को अपने पास ही नहीं फटकने देती। एकदम डायन–जैसा करती है। खुद ही मायके चली गई है। आने का नाम नहीं लेती। उसपर किसी ने कुछ कर दिया है। सो जाने कहाँ–कहाँ से तांत्रिक बुलाकर अनुष्ठान किये जा रहे हैं। प्रकाश बहुत परेशान है।

खैर बहुत अनुष्ठानों, प्रकाश के बहुत मान–मनौवली, विजया, जया की खुशामदों के बाद बहू आई, तो पर अपने कमरे में बिफरी पड़ी रहे, यहाँ घर में लड़की देखनेवाले बराबर आ रहे हैं। जया को तो छुपाते रहे हैं। पर नई नवेली बहू को तो सामने लाना ही है। सो दोनों बहनें, बहू की खुशामद कर, सजा–सँवारकर तैयार करती है। सास, बहू को लेकर मेहमानों के सामने जाती है, मन–ही–मन डरती, न जाने मेहमानों के सामने क्या बोल दे। आखिरकार विजया की शादी भी हो ही गई। जैसी विजया, वैसा
ही उसका दूल्हा। सामान्य रूप रंग। सामान्य कदकाठी, सामान्य पढ़ाई। धमतरी शहर के बीच बाजार में बर्तनों की पुरानी दुकान। बाप दादा दुकान चलाते थे। लड़का (यानी वर) भी बैठता है उसी दुकान में। एक कसक तो थी सभी में, पर संतोष भी कि चलो विजया की शादी तो हुई। हाँ, विजया सच में खुश थी। पर जया की शादी में फिर देर। पहले जब लड़केवाले आते थे, तो जया को छुपा दिया जाता रहा। कोई पार्टी जोर देकर जया को माँगे तो साफ कह दें–अभी उसकी शादी नहीं करनी है। समझते थे जया अतीव सुंदरी है, शादी तो हो ही जायेगी। मगर जब विजया की शादी निफ्टी, तब तक बहुत देर हो चुकी। जो लड़के वाले जया के लिये आते, उन सभी लड़कों की शादियाँ हो चुकी थीं। इधर जया की उमर तीस पार। सो 'पत्र–पत्रिकाओं में विज्ञापन', 'बिरादरी के वरकन्या मिलन समारोह में प्रदर्शन, ज्योतिषियों तांत्रिकों के बताये व्रत अनुष्ठान। टोने टटके। पूरा घर इसी दौड़–धूप में लगा रहता। तिस पर समाज बिरादरी वाले कहते, 'प्रकाश मन से बहन की शादी लगाने की कोशिश ही नहीं करता। उसे तो अपने बच्चे
खिलाने के लिए अच्छी आया मिल गई है। प्रकाश की 'रूठी देवी' जब से मन गई थी, उसके बच्चे भी हो गये थे, यह सच में बहुत खुश दिखता।

और आखिरकार जया की भी शादी हो गई। जैसी सुंदर जाया, वैसा ही सुंदर उसका दूल्हा। दूल्हा दो बहनों का इकलौता भाई। बहुत दुलारा। दोनों बहनें डॉक्टर हैं। बड़े घरों में व्याही गई
है। खूब दान–दहेज दिया गया है उनकी शादियों में। वैसा ही वे इकलौते बेटे की शादी में चाहते थे। पर अतीव सुंदर बहू पाकर कुछ बोले नहीं। वे लोग नामी 'आभूषण' विक्रेता है। दुर्ग के सर्राफा बाजार में धाक है। भारी जमीन जायदाद है। सचमुच महलों की रानी बन गई जया तो।

विजया ससुराल चली गई, जया भी। बेटियों की शादी की भारी चिंता मिटी, मगर अब नई परेशानी। मम्मीजी अब अक्सर मेरे घर आने लगी। 'बहन' तो मैं ही कह बैठी थी। सो शिकायतों का पिटारा खोल देती–प्रकाश तो अब एकदम जोरू का गुलाम हो गया है बहन। न जाने क्या खिला दी है कि जैसा नचाती है, वैसा नाचता है। माँ को तो कुछ समझता ही नहीं। प्रकाश तो प्रकाश, ससुर को भी मोह ली है। पहले भी मुझे नहीं पूछते थे, अब तो छाती पर मूंग दल रहे हैं। हर बात में उसी की तरफदारी। अपनी पेंशन का पैसा भी उसी के हाथ में देते हैं। कर रही है धड़ाधड़ खर्च। विजया, जया कितना सुंदर घर सजा कर रखती थीं। ढूढ़–ढूढ़कर सजावट की चीजें लाती थी घर में। यह लाती है सिर्फ अपने सजने की चीजें। एक से एक गहने, कपडे, दस तरह की लिपिस्टिक, पचास तरह की क्रीम। सब चीजें कीमती, ब्रांडेड। जब से जया गई है, चौबीस घंटे की नौकरानी रख ली है। घर की साफ–सफाई, बच्चों की देखभाल, सब उसी नौकरानी के जिम्मे। बच्चों के मन में ऐसा जहर भर दी है, मुझे देखते ही कहते है–दादी गंदी, दादी बदमाश। दादी को गालियों में, नौकरानी के दीवाने। सो लुटा रही है नौकरानी पर। मैं पैसे–पैसे के लिए तरस रही हूँ। परिवार के साथ रहनेवाला प्रकाश अब यार–दोस्तों के साथ सैर–सपाटे में। साथ में छिछोरी बीबी। पैसेवालों की संगत। आये दिन होटलबाजी, पार्टी, पिकनिक। हा–हा हूँ–हूँ। ससुर मांसाहार के शौकीन थे। मगर बाहर खाते थे। घर में नहीं बनता था। इस कमीनी के घर में बनता था। सो खिला रही है ससुर को रोज कभी मछली, कभी मटन, कभी मुर्ग मुसल्लम। सीधे–सादे सात्विक प्रकाश को भी मांसाहारी बना दी है। कहीं खपरैल की खस्ताहाल मटैया में रहती थी, अब कहीं शानदार महल जैसा सजा–सँवरा घर पा गई। गुलाम पति, गुलाम ससुर, खुला हाथ खर्च। दिमाग आसमान में। मेरी ती नौकरानी जैसी भी औकात नहीं। इसकी तो नौकरानी तक को सब मान देते हैं। बेटा सुभाष कुछ–कुछ समझता है, मगर उसकी भी बुद्धि भ्रष्ट करने के चक्कर रहती है। तरह–तरह के नखरे दिखायेगी, रूठेगी। देवरजी–
देवरजी करती लिपट–लिपटकर मनायेगी। अपना गुलाम बनाने के चक्कर में है। चाहती है उसके लिये कोई गरीब घर की बदसूरत– सी लड़की आ जाये। मगर मैं भिड़ जाती हूँ, सुभाष की शादी में बड़े घर में करूँगी...।

और सुभाष की शादी सच में बड़े घर में हो गई। अनायास ही। उसके ससुर की आभूषणों की खानदानी दुकान थी। खुद कॉलेज में प्रोफेसर भी थे। पत्नी भी प्रोफेसर थी। बेटी भी पढ़ी लिखी एम.ए. पास। सामान्य सुंदर। तिलक में बढ़ाया नगद चार लाख रुपये। गहने–कपड़े, फल–फूल, मिष्ठान जगमग कर दिया सारा घर। मम्मीजी अब खुश। तारीफ ही तारीफ आखिर बड़े घर की लड़की है। ढंग भी बड़े घर जैसा। मेरे लिए ससुर से भिड़ जाती है। जब भी मायके जाती है, सोने–चाँदी का छोटा– मोटा जेवर जरूर लाती है। पिछले बार गई थी तो मेरे लिए नाक की यह लौंग लाई थी।

सभी शादियों में मेरा यथोचित मान–दान किया गया। मिठाइयों, फल, साड़ियाँ दी गई। मौसी तो कहते ही थे। सो मैंने भी आशीर्वाद में सोने या चाँदी के छोटे–मोटे जेवर ही दिये।

बेटे सुभाष का बचपन अपने ननिहाल में गुजरा था। वह जब अपने माता–पिता के पास रहने आया, तब नवीं कक्षा में पढ़ता था। उसे माता–पिता से विशेष लगाव नहीं था, न ही भाई– बहनों से। शादी होते ही उसके बच्चे भी हो गये। बच्चे घर के काम, खर्च–पानी आदि बातों को लेकर घर में रोज किचकिच होने लगी। सो सुभाष अपना परिवार लेकर अलग रहने लगा। कारोबार उसका प्रकाश के साथ ही था, भवन निर्माण सामाग्री वाला। अपनी–अपनी गृहस्थी में मगन दोनों भाई स्वार्थी हो चले थे। खुद
बीबी बच्चों के साथ मौज मस्ती करते, छोटे बबलू को धंधे में भेज देते। ईंट भट्ठे में जाकर मजदूरों से काम करवाना, लोहा लक्कड़, सीमेंट गोदाम में सुरक्षित रखवाना, ग्राहकों के पास भिजवाना। ढेरों काम। सीधा बबलू। कुछ–न–कुछ गड़बड़ हो जाती। दोनों भाई बहुत बिगड़ते। तिसपर उसे जेब खर्च देने में भी कोताही। कहते धंधा मंदा चल रहा है।

विजया–जया जब भी मायके आती, भाइयों को जोर देतीं, विशेषकर

प्रकाश को, बबलू का कोई अपना कारोबार हो। भाई कहते, उसे कई कारोबार में लगा चुके। सिर्फ पैसा बर्बाद हुआ। वह कुछ नहीं कर सकता। कुछ नहीं करे, तो शादी कैसे हो। कौन अपनी लड़की दे। सो बबलू की शादी में फिर बहुत देर। आखिर विजया ने ही लड़की ढूँढी। बेहद गरीब घर की। माँ–बाप नहीं है। एक बड़ा भाई है। छः बहने हैं। पुरखों का एक पुराना मकान है। उसी मकान को बेचकर पाँच बहनों की जैसे–तैसे शादी कर दी। सबसे छोटी बहन और अपने परिवार के साथ किराये के छोटे से मकान में रहता था। सौभाग्य से विजया देवी छोटी बहन को माँगने पहुँच गई। भाई ने हाथ जोड़ दिये कुछ नहीं दे सकता है, पर इतना आश्वस्त कर सकता हूँ कि माँजी की सेवा जनम भर करेगी। विजया बोली बस हमें यही चाहिये। मम्मी हमारी बूढ़ी हो चलीं। हम दोनों बहने अपने ससुराल में। हमारी दोनों भाभियाँ अपनी गृहस्थी में व्यस्त। बस यह हमारी माँ की सेवा करे।

और यह छुटकी बहू सच में सेवा करती। झाड़ू–पोछा, चौका–बर्तन, खाना बनाना, कपड़े धोना, घर के हर छोटे से लेकर बड़े काम। दिन–भर खटती रहती। रात गये सास के पाँवों में तेल लगाकर मालिश करती। दोपहर में उनके पूरे शरीर में ही मालिश करती। बालों में डाई लगा देती। सजा–सँवार देती। कहती, मुझे तो अपनी माँ मिल गई है।

मम्मीजी अब जब भी मेरे घर आती, बेहद संतुष्ट। कभी शिकायत नहीं करतीं कि शादी में कुछ नहीं मिला। उल्टे छोटी बहू का पक्ष लेती–''जब से यह छुटकी आई है, कमीनी बड़की ने घर की नौकरानी तो छुड़वा ही दी है। धोबी, माली सब छुड़ा दी। ऊपर से दिन–रात उसे लताड़ती रहती है, पानी भरकर नहीं रखी। कपड़े प्रेस नहीं की। एक दिन तो तड़ातड़ मारने लगी थी, 'दोनो मियाँ–बीबी मुफ्त की खा रहे हो। नाली तक साफ नहीं कर सकती। आखिर में माँ भड़की–वह मुफ्त की खा रही है, तो तुम भी मुफ्त की खा रही हो। पूरा घर मेरे आदमी के पेंशन पर चल रहा है। छुटकी पूरे घर की नौकरानी बनने नहीं, मेरी सेवा करने आई है। बस पूरा घर मुझपर ही हाँव–हाँव। 'जोरू का गुलाम प्रकाश' कहने लगा–''मम्मी! बड़ी भी तो कितना खटती है। बच्चों को सबेरे से तैयार करना। स्कूल, फिर ट्यूशन ले जाना, लाना। टीचरों से बात करना, राशन पानी, सब्जी–भाजी, झाड़ू बहारू, घर की हर जरूरत के लिये बाईक उठाकर दौड़ती रहती है बेचारी। जब वह बाहर का काम सँभालती है, तो यह भीतर का काम सँभाले। बुड्ढा तो है ही बड़की का दीवाना। कहने लगा... बड़की पूरा घर सँभाले है। होशियार है। घर की मालकिन है। यह जो कहे, सबको मानना होगा। बस फिर मेरे मुँह में जो आया, बकी खूब। बुड्ढे ने फिर मुझे खूब मारा। शुभ्रा तुम तो मुझे किसी अच्छे वकील के पास ले चलो, जो मुझे हर महीने बुड्ढे की आधी पेंशन दिलवा दे।

मैं तो नहीं ले गई उसे किसी वकील के पास। मगर कुछ दिनों के बाद वही आई, तो बताई कि एक दिन भारी मारपीट के बाद सुभाष आया। दोनो भाइयों ने तय किया कि मम्मी, बबलू और उसकी पत्नी के साथ घर के ऊपरी हिस्से में रहेगी। घर चलाने के लिए पापा के पेंशन का एक हिस्सा 'बबलू–मम्मी' को दे दिया जायगा। कहने लगी–मालूम है–''बहन! इतने नीच है वे लोग। मेरा ही बसाया घर और मुझे ही कोई चीज नहीं ले जाने दे रहे थे। खूँखार लड़ाई लड़ी हूँ में, तब जाकर मेरे दहेज वाले बर्तन, एक पलंग, एक खाट और थोड़े से फर्नीचर मिले हैं।'' बीच में विजया– जया आई थीं तो मुझे ही समझाने लगी–मम्मी जो मिल गया, उसी में संतोष करो। सेवा करने वाली बहू साथ है, यही बड़ी बात है।

बताती रहती, सच में शुभ्रा बहू बेचारी इतने में ही सब जुगाड़ कर ली है। पर एक भारी दिक्कत है। मकान बनते समय ऊपर में सिर्फ दो कमरे ही बन पाये थे। बाकी जगह खाली छत। उन दो कमरों में भी ठीक से पलस्तर वगैरह नहीं। बाथरूम टॉयलेट तो बना ही नहीं। सोचे थे कि बाद में बनवा लेंगे। किसने सोचा था कि बीच में बँटवारा हो जायेगा। सो टॉयलेट के लिए नीचे जाना पड़ता है। नीचे जाने के लिए सीढ़ी का एक सिरा छत में दूसरा नीचे घर के सामने हाते में। रात में घर का मुख्य दरवाजा बंद हो जाता है। मुझे सबेरे जल्दी हाजत लगती है। किसी तरह रेलिंग पकड़कर नीचे उतरूँ हाते में, तो घर का दरवाजा बंद। घंटी बजाऊँ, दरवाजा मड़मड़ाऊँ, तो प्रकाश ही आँख मलता उठे। कभी प्रकाश न उठ पाये या कहीं बाहर गया हो, तो दरवाजा पीटते मेरा साया ही खराब हो जाये। बुढ़ऊ तो खैर दरवाजा खोलते हैं नहीं। झखमार कर बहू को उठना पड़े तो क्या न बके. 'सबेरे से सबकी नींद खराब करती है। इतना खाती ही क्यों है कि सबेरा होने के पहले ही हगास लग जाती है। रोज भारी घमासान। तिस पर कभी पानी बरस रहा हो तो विकट दुर्गति।

मुझे बहुत दुख हुआ। सोचा, जैसे भी हो, टॉयलेट तो बनवा ही दूँ।

मगर विजया–जया जब भी मायके आती, मुझसे मिलती तो मुझसे ही कहती–मौसी! आप मम्मी को समझाइये कि भाभी के साथ मिलकर रहें। देखिये मौसी, हम आते हैं, दो–तीन दिन के लिये, तो ठहरते हैं, नीचे प्रकाश भैया भाभी के पास ही न। हमारे पति आते हैं, बच्चे आते हैं। कोई अन्य ससुराली रिश्तेदार आते हैं तो नीचे ही न ठहरते हैं। प्रकाश भैया–भाभी ही न, जैसा बने मानदान निभाते हैं। दो मिनट के लिए हम ऊपर जाते हैं तो मम्मी बस शिकायतों का पिटारा। मैं समझाती, वह सब तो चलता रहेगा, मगर तुम दोनों बहन पापा पर जोर डालकर–''ऊपर टॉयलेट तो बनवा दो।'' कहतीं–''देखिये, मौसी! पापा के पेंशन के पैसे से घर चल रहा है। उनके 'भविष्य निधि' का पैसा मिलेगा, तब बनवा देंगे।'' मैं कहती–''वह पैसा तो जब मिलेगा, तब मिलेगा। टॉयलेट बहुत जरूरी चीज है, तुम दोनों प्रकाश, सुभाष किसी पर जोर डालकर बनवा ही दो।'' कहती–''मौसी! प्रकाश भैया कहते हैं कि उनका धंधा बहुत मंदा चल रहा है। सुभाष भैया शुरू से हमलोगों से अलग से हैं। अलग तो रहने ही लगे थे, कारोबार भी अलग करने लगे हैं। मिलना भी नहीं हो पाता।'' मैं फिर भी कहती–''जया, तुम तो इतने अमीर घर में गई हो, विजया तो अब व्याख्याता हो गई है। व्याख्याताओं की वेतन अब बहुत ज्यादा है। तुम्हीं दोनों बनवा दो।'' जया कहने लगी–''मौसी मेरी ससुराल है, सोने का पिंजरा। मैं कुछ नहीं कर सकती।'' विजया ने साफ हाथ आड़ लिये। मौसी! टॉयलेट पाँच दस हजार में नहीं बनता। बहुत पैसा लगता है। मेरी सारी तनख्वाह देखते–देखते उड़ जाती है, बच्चों के स्कूल की फीस, ट्यूशन की फीस, उनके ढेरों तामझाम, घर की नौकरानियों का खर्च, राशन–पानी, दूसरे तामझाम। पति का धंधा मंदा। हाथ में एक पैसा नहीं बचता।

जया साफ बोली–''देखिये, मौसी! हम मम्मी के कारण प्रकाश भैया–भाभी को नाराज नहीं कर सकते। मायके के नाम पर हम उन्हीं के पास तो आते हैं। आप तो खुद समझती हैं, जिसका मायका दमदार नहीं, उसकी ससुराल में कदर नहीं। प्रकाश भैया भाभी, घर की शान शौकत, जैसे भी हो, बना कर रखे हैं। पापा बहुत चिड़चिड़े हो गये हैं। भैया–भाभी उन्हें मना कर रखते हैं। घर, घर जैसा लगता है। पापा के अत्याचार पर हमलोग हमेशा मम्मी का पक्ष लेकर लड़ते थे, मगर अब हमलोगों की भी तो जिंदगी है।
सब समझकर चलना पड़ता है।''

इसके बाद कई बरस बीत गये। विजया, जया इस दौरान दो तीन बार मायके आई। समय निकालकर थोड़ी देर के लिए मुझसे भी मिलने आई। आई तो अपने नये परिवार की ही बातें– ''मेरा हनी कक्षा में प्रथम आया है। सनी की पेंटिंग सर्वश्रेष्ठ घोषित हुई। रजत जयंती समारोह में बेटी वान्या ने जो नृत्य प्रदर्शन किया, उसकी सारे अखबारों में प्रशंसा हुई। मेरी सास बाथरूम में गिर गई। प्लास्टर बंधा है। मेरे ससुर को तो लकवा मार गया। अजब तोतले जबान में बड़बड़ाते रहते हैं। बड़ी मुसीबत है।''

''तुम्हारी मम्मी कैसी है?''

''हाँ ठीक है। देखिये, भाभी ने यह साड़ी दी है। प्रकाश मैया मेरे बच्चों को मेला घुमाने ले गये थे।''

टॉयलेट की बात हवा।

उसके बाद लंबा समय बीत गया। ऊपर से कोई संचार नहीं। कारण पहले मम्मीजी बबलू की बाईक में बैठकर मेरे घर आ जाती थीं। यही आकर ले भी जाता था, मगर फिर उसने लाना– ले जाना छोड़ दिया। सो सबंध टूट ही गया। अचानक उनके पति की मृत्यु का समाचार पता चला तो उनके घर गई। प्रकाश की पत्नी ही संवेदना व्यक्त करनेवालों से बोल–बतिया रही थी। उसी ने बताया–''काफी दिनों से बीमार चल रहे थे पापा। हमलोगों से जितना बन सका,

सेवा किये, पर नहीं बचे। मौत की खबर पाते ही विजया, जया आई थी। सुभाष और उसकी पत्नी भी आये। दाह संस्कार होते ही सब चले गए। बोले के तेरहवीं में आयेंगे। मेरे पति और बबलू अस्थि विसर्जन के लिए प्रयागराज गये हैं।

मम्मीजी एक तरफ चुपचाप बैठी थीं। मैं उनके पास जाकर बैठी। कंधे पर हाथ रखा। फुसफुसाते हुए बताने लगी कुछ सेवा नहीं की है। खाने के लिए नहीं देती थी कि खायेगा तो हगेगा। मैं तो समझ रही थी, चटोरा बुड्ढा खाने के लिए तरस रहा है। हलवा बनवाकर छुपाकर ले गई थी तो खूब भड़की–''मार डालेंगी क्या बुड्ढे को।'' मारी यही है तरसा–तरसाकर।

फिर उन लोगों से कोई संचार नहीं। लंबा समय बीत गया। वे जैसे किसी अतीत का किस्सा हो गये। मुझपर भी उमर हावी होने लगी। उनकी बातें भूल–सी गईं कि ''अचानक, विजया का फोन. मौसी आप मम्मी को कुछ दिनों के लिये रख सकती हैं क्या?''

मैंने हामी तो भर दी, पर सोच में पड़ गई। इन विजया लोगों से मेरा संबंध तो था, मगर अब तो बीस बरस से ऊपर ही हो गए। बात किसी पुराने जमाने की–सी हो गई। उसके पिता की मृत्यु पर मैं गई थी, कुछ देर के लिये। मगर न विजया थी, न जया, न बबलू। उनकी मम्मी के पास जरा देर बैठी, तो उनका वही राग। कोई सेवा नहीं की है, तरसा–तरसा कर मारी है। जैसा मुझे सताते थे, वैसा खूब भुगते हैं बुढ़ऊ। विगत में जब भी मेरे घर आती थी, शिकायतों का पिटारा धरे आयें–''सास का अत्याचार, पति का अत्याचार, बहुओं का अत्याचार, आखिर बेटों का अत्याचार। पूर्णाहुति में पोते–पोती का अत्याचार। रिश्तेदारों के बारे में भी बतियाये, तो तीन बातें मुख्य। अमुक इतने पैसेवाले हैं, उनके पास इतना सोना है, इतनी चाँदी, घर उनका इतना शानदार, घर में सब इतने सुंदर। शायद उनका कोई रिश्तेदार गरीब, असुंदर था ही नहीं। परिचितों में भी सभी पैसेवाले, महल–दुमहलों वाले, सभ्य, सुंदर। उनमें कितने ही उनसे शादी के लिए मरनेवाले।''

उनका ढंग, उनकी बातचीत सब मुझसे एकदम विपरीत। पर तब मैं उन्हें झेल लेती थी कि इनकी बेटियाँ मेरी छात्रा रही हैं। मुझे मान देती रही हैं। मगर अब तो रहने ही आ रही है। जैसा इनका रंग–ढंग है, लौटकर जाने मेरे बारे में क्या बोलें, प्रचार करें। इसलिए घर रखना है चाक चौबंद।

मंगलवार को आना है उन्हें। आज शनिवार है। बैंक में जमा थोड़े से पैसों पर मिलनेवाले ब्याज पर मैं गुजारा करने वाली। नौकरानी नाम पर सिर्फ एक बाई आती है चौका–बर्तन करने। पाँच मिनट में सटासट की और भागी। उसे दस घर निपटाने होते हैं। इतने बड़े घर की साफ सफाई व्यवस्था सब मेरे सिर। करती ही हूँ। सो और अच्छे से जुट गई, फर्नीचरों की अलमारियों की धूल–गर्द। छत में लगे जाले, आँगनबाड़ी की सफाई, बाथरूम टॉयलेट की सफाई, वहाँ पानी, साबुन, तौलिया रखना, सो बाल्टियाँ, मग, टब माँजते, साफ करते, परत पड़ गई है। उसके रहने सोने का प्रबंध मैंने घर के सामनेवाले बरामदे से लगे बैठक में ही कर दिया, ताकि घर के भीतर मुझे आने–जाने काम–धाम करने में असुविधा न हो। इसके लिए पड़ोस के एक युवक को बुलाकर भीतरी कमरे में रखा, एक बेडवाला पलंग निकलवाकर बैठक में रखवाया। दीवान के भीतर रखे गद्दा, कंबल, चादरें, तकिये निकालकर बिस्तर जमा दिया। जीरो पावर का बल्ब लगवा दिया, ताकि रात में परेशानी न हो। भोजन के लिए मैंने टिफिन बंधवा रखा है। पर सुबह का नाश्ता मैं स्वयं बनाती हूँ। अपने लिए अक्सर उपमा या पराठे बना लेती हूँ। पर मेहमान के लिये सूजी, बेसन, चिउड़ा, मूंगफली दाना, किशमिश, इलायची सभी जरूरी चीजें मँगवा ली। कोई चीज कम न पड़े।

मंगलवार। सुबह से ही मैंने घर–द्वार साफ–सुथरा कर एक बार फिर देख लिया कि सभी चीजें ठीक–ठाक हो, ताकि नहा–धोकर उनके आने के पहले ही अपना पूजा–पाठ निपटा लूँ। सामने का दरवाजा खुला छोड़ दिया। पूजाघर में थी ही कि एक अत्यंत मीठी आवाज सुनाई दी–शुभा! इतनी मीठी आवाज। मैं अवाक्। अरसे से मेरा नाम लेकर मुझे कोई आवाज नहीं देता। जब से कंप्यूटर सेंटर चलाने लगी थी, तब से सब मुझे 'मैडम' ही कहने लगे हैं। कभी कदा कोई पुरानी सहेली आ जाये, तो वही नाम लेकर आवाज देती है। मगर उनकी भी आवाज इतनी मीठी नहीं। सो पूजाघर से झाँककर देखा, सुंदर वस्त्रविन्यास में सँवरी एक सफेद बालों वाली, प्यार छलकाती वृद्ध, बाहें पसारे चली आ रही है। अरे, यह तो वही। मैं भी आगे बढ़ी। मिली गले। बोली–आप बैठो। पानी–वानी पियो। मैं अभी पूजा में हूँ...

गजब की मीठी आवाज ...हाँ–हाँ ...मैं बैठती हूँ। तुम आराम से पूजा करो।

पूजा समाप्त कर मैं उसके पास गई। पूछा–बबलू कहाँ है?

बोली.. मुझे उतारकर चला गया है। उसे गाड़ी पकड़नी थी न। सामान बाहर रख गया है।

बाहर बरामदे में गई। देखा. एक सूटकेस, दो बड़े बैग, दो तीन थैले रखे हुए हैं। सबको ले जाकर बैठक में उसके बिस्तर के पास रखी। बड़ी मेज में जमाया। वह बैठक में आकर गौर से सब देख रही थी। मैं कहने लगी–यह रहा आपका बिस्तर, सामने यह टी.वी. यह रिमोट। जब मन लगे आराम करो, जब मन लगे टीवी देखो। नहीं तो यह सामने बरामदा है। कुर्सियाँ रखी हैं। आराम से सामने बैठकर बाहर सड़क का नजारा देखो। पड़ोसियों से बोलो, बतियाओ।

हम वहीं बैठ, बतियाने लगे।

कहने लगी बहुत बढ़िया बहन! बहुत बढ़िया। घर में सब कह रहे थे–गुप्ताजी के यहीं ठहरो। बड़े लोग हैं। वहीं सब सुविधाएँ है। मगर मैं बोली–मैं तो अपनी बहन के घर ठहरूँगी। दोनो बहन मजे

से दिन गुजार लेंगे। कितने दिन हो गये थे तुम्हें देखे।

हाँ, बहुत दिन हो गये। बूढ़े हो गये हमलोग तो। वैसे आपको गुप्ताजी के घर ठहरना था।

कैसी बात करती हो शुभ्रा, मैं अपनी बहन का घर छोड़कर गुप्ता लोगों के घर जाती।

खैर छोड़ो, चाय–वाय पीना है। नाश्ता–वास्ता कुछ?

कुछ नहीं। यहाँ आने की तैयारी सबेरे से ही कर रहे थे। सब तैयारी कर चाय–नाश्ता वगैरह लेकर ही आये हैं।

मेरा टिफिन तो एक बजे के बाद ही आता है। आप कब खाना खाते हो?

अरे, यह छोटकी जब बना दे, तब।

तब भी कोई समय?

कोई समय नहीं। जब उसे फुरसत मिलेगी, तब बनायेगी।

मैंने बात बदली ...इस बबलू की आँख को क्या हो गया है?

उसे दिखता नहीं था। रायपुर एम्स गया था जाँच करवाने। पता चला, ऑपरेशन करवाना पड़ेगा। मगर उसे शक्कर की बीमारी है, वह ठीक होने पर होगा ऑपरेशन। उसे ही ठीक करने का इलाज चल रहा है।

घर में सबसे छोटा, उसे ऐसी बीमारी कैसे हो गई?

टेंशन। कोई काम–धाम नहीं। बच्चे भी नहीं हुए। बाप के पेंशन के पैसे में से जो थोड़ा–सा मिलता है, उसी से घर चलता है। पेंशन प्रकाश ले लेता है। सो उसके लिए प्रकाश के चक्कर लगाने पड़ते

हैं। पत्नी अलग लताड़ती रहती है।

आपका टॉयलेट बना कि नहीं।

किसने बनवाया। प्रकाश ने? सुभाष ने?

किसी ने नहीं। इनके पापा की मौत पर बहुत लोग आये थे। गुप्ताजी भी आये। मैं उस समय ऊपर में थी, सो मुझसे मिलने ऊपर आये। साठ साल पहले मेरे पति खलासी थे। गरीब मुहल्ले में झोपड़े में रहते थे हम। सामने गुप्ता लोगों की छोटी–सी किराना दुकान थी। दुकान से लगा मकान। वे लोग देखते कि मैं तड़के सुबह से लेकर रात गये खटती रहती हूँ, फिर भी कितना सहती हूँ। सो उन लोगों को मुझपर बड़ी दया आती। अक्सर सामान उधार दे देते। समय का चक्र। दोनों परिवार की राह अलग हो गई। अब वे बड़े बिल्डर हैं। बेटों ने कारोबार बहुत बढ़ा लिया है। उन्हें पता चला, ऊपर टॉयलेट नहीं है, तो बेचारे ने प्रकाश से बात की। पूछा–कितनी पेंशन मिलती है। पता चला.. पचहत्तर हजार। बोले हर महीने 'गुप्ता बिल्डर्स' के खाते में पाँच हजार जमा करो। मैं टॉयलेट बनवाता हूँ। शाम से ही गुप्ता बिल्डर्स की गाड़ियाँ ईंट, रेत. सीमेंट लेकर आने लगीं। इधर श्राद्ध कर्म चल रहा था, ऊपर टॉयलेट बन रहा था।

श्राद्ध का खर्च किसने दिया?

बुढ़ऊ उसके लिये पैसा छोड़कर मरे थे। कुछ सरकार से भी लिये हैं।
मैं कहने लगी ये प्रकाश का कारोबार इतना गड़बड़ा कैसे गया? मैं जब आपके घर आती–जाती थी, तब तो लगता था, कारोबार बुलंदी पर है। कई ट्रक, गाड़ियाँ, ट्रालियाँ, कारें, शानदार रहन सहन।
सब गुलछर्रे उड़ाकर खतम कर दिये। रईस लोगों से बराबरी। आये दिन होटलबाजी, पार्टी, पिकनिक। मैं कितना समझाती थी– प्रकाश! हाथ रोककर खर्च करो। मगर वह तो जैसे बीबी को खुश करने के पीछे पागल। आये दिन बीबी को लेकर ससुराल। धाक जमाने उनके खपरैल की मड़ैया को शानदार घर बना दिया। मैं कुछ बोलूँ तो खाँय से। प्रकाश तो प्रकाश, उसका बाप समधन के पीछे पागल। प्रकाश के साथ खुद भी पहुँच जाये। उधर प्रकाश बीबी के साथ उड़ा रहा है, इधर घर में समधी–समधन की रंगरेलियों। लुटा रहे हैं बाप–बेटे, माँ–बेटी पर। पैसा फुर्र। धंधे में ध्यान ही नहीं। सुभाष अलग रहता ही था। कारोबार भी अलग जमा लिया। राजनांदगाँव में शानदार जम गया है, उसका कारोबार। रहने भी लगा है वहीं।
सुभाष ने कैसे जमा लिया अपना कारोबार?
ससुराल उसकी पैसेवाली। सुबुद्धि वाली। उसके साढू ने मदद की। वह एजेंट है नामी कंपनी का। सुभाष को भी ऐजेंसी दिला दी–सीमेंट की, सरिया की और दूसरे भवन–निर्माण वाली चीजों की। आज सुभाष का शानदार मकान है। बड़े लोगों के बीच उठना–बैठना है। समाज में मान है। उसकी पत्नी भी समझदार। बड़े घर की। दिखावेवाली नहीं। सुभाष जम गया ससुराल के कारण। प्रकाश उजड़ गया ससुराल के कारण।
आपको सुभाष के साथ रहना था। आपने खुद कहा था–सुभाष की पत्नी बहुत अच्छी। आपके लिए ससुर से भिड़ गई थी।
रही थी मैं सुभाष के घर। खूब अच्छे से रखा उन लोगों ने। सुभाष रोज काम–धाम से निपटकर मेरे पास आकर बैठता था। नौकर चाकर थे, तब भी उसकी पत्नी खुद मेरा खयाल रखती थी, पर!
पर क्या?
यही कि वे चाहते थे कि जमीन का जो प्लॉट मेरे नाम है, उसे उनके नाम कर दूँ। उन्हें डर था कि प्रकाश अपने नाम न करवा ले। उसकी पत्नी तो पीछे ही पड़ी रहती थी।
आपके नाम जमीन है?
हाँ....
औ मकान?
वह भी।
इतनी जायदाद आपके नाम कैसे कर दिये?
हुआ यह कि उन दिनों जब यह मालगाडी ड्राईवर थे, इनके बहुत से साथियों को पता चला कि शहर की सीमा पर जो जमीन वीरान पड़ी है, वह बिक रही है बहुत सस्ते में। ड्राईवर, फोरमैन, गार्ड–सब धड़ाधड़ जमीन खरीदने लगे। इनका भी मन आ गया। मगर वे तो सबेरे से गाड़ी लेकर निकल जाते थे। कचहरी जाकर
लिखा–पढी वगैरह करनेवाला घर में कोई आदमी नहीं। बच्चे छोटे। तब इनके साथी कर्मचारी मुझे ही लेकर कचहरी जाते थे। सब लिखा–पढ़ी मुझसे ही करवाते। इसी सबमें जमीन मेरे नाम हो गई। तब कौडियों की जमीन आज करोड़ों की हो गई।
और मकान?
जमीन काफी बड़ी थी। उसके दो प्लॉट किये गये। एक में मकान बना, दूसरी वाली पड़ी है। हमारे बगलवाला जो प्लॉट है, हमारा ही तो है।
तब तो आप करोड़ों की मालकिन हैं।
उसी का तो झगड़ा है। विजया–जया चाहती है कि मकान में बेशक प्रकाश रहे. पर मकान की जमीन तो माँ के नाम है। सो जमीन का जो पैसा बनता है आज की तारीख में, वह दोनों बहनों को दे दे। पर मकान बनाने में बाप का पैसा लगा है। उसमें से भी कुछ दे। फिर कुछ पैसा प्रकाश का भी लगा है। दोनों बहनें प्लॉट में भी हिस्सा चाहती है। उसमें तो सभी की निगाह गड़ी है। बहुत पेंच है।
आप क्या चाहती है?
मैं चाहती हूँ–विजया–जया का जो हिस्सा बनता हो, उन्हें दे दिया जाये। सुभाष बहुत पैसेवाला है। उसने परिवार के लिए कुछ किया भी नहीं है। उसे क्या कुछ देना। मगर बबलू तो लगभग मिखारी है। मेरे बाद पेंशन का पैसा बबलू को मिले, क्योंकि पेंशन मरनेवाले की आश्रित संतान को मिलती है। बबलू बेचारा तो आश्रित ही है न। मगर प्रकाश पेंशन का पैसा खुद लेना चाहता है। अभी भी जाने क्या–क्या करके खुद ले रहा है। जबकि मैं पत्नी हूँ, पेंशन मुझे मिलनी चाहिये। प्रकाश को मैंने सबसे ज्यादा प्यार किया है। कारोबार जमाने के लिए मैंने अपने सारे गहने निकालकर दे दिये थे। प्रकाश ने शुरू में जेवरों का ही कारोबार किया था। अच्छा चल रहा था धंधा। हम खानदानी सुनार हैं। मैं कितना समझाती थी–प्रकाश! सुनार की साख एक बार गिरी, तो उठना मुश्किल। पर प्रकाश लालच में पड़ गया। ऐसा कांड हो गया कि धंधा ठप्प। फिर ईंट भट्ठे का धंधा किया। वह भी अच्छा चला। दो–दो ट्रक, ट्रालियाँ, गाड़ियाँ खरीद लीं। शान–शौकत का शौकीन था ही, फिर यह 'घर बर्बाद महारानी' आ गई। यह महारानी में मगन। बबलू को भट्ठे में भेज दे। लोहा लक्कड़, सीमेंट के काम में लगा दे। बबलू सीधा। अकल भी कुछ कम। ईंटे मुरमुरी, सीमेंट जाम, लोहे में जंग, धंधा चौपट। ट्रक जब्त। उसकी किश्ते पटानी बाकी है। माल भेजनेवालों को पटाना है। सिर पर भारी कर्ज। बहुत टेंशन में है प्रकाश। सोचता है, बगलवाला प्लॉट बेच दे, तो कर्ज पट जाये ....

वह परिवार जिससे मेरा दशकों पहले संपर्क छूट गया था, अब नये सिरे से बुलाता नजर आ रहा था। उन दिनों मैं इन्हें संपन्न सुसंस्कृत, सुंदर परिवार समझती थी जिसमें बहुओं के आने से खटपट हो रही है।

हम बातें कर ही रहे थे कि बाहर टिफिनवाला आ गया। मैंने दो टिफिन मँगवाया था। उठकर दोनों टिफिन लाई। खाने की मेज पर रखा। प्लेटें, कटोरियाँ, चम्मचें गिलास लाकर रखने लगी। पानी का जग लाती हुई बोली जरा देखिये, क्या–क्या भेजा है? वह खाने की मेज पर आई। टिफिन खोलकर देखा। बोली– चावल, दाल, सब्जी, रोटी, सब भरपूर भेजा है। सलाद भी है। इतने में तो हमारा शाम का भी हो जायेगा। शाम का टिफिन मत मँगवाना। मैं तो वैसे भी बहुत कम खाती हूँ।

उसने चावल तो सिर्फ दो चम्मच लिये। रोटी, दाल, सब्जी ठीक से खायी। दाल भी कुछ बच गई। मैंने हमेशा की तरह भरपेट खाया। खाते हुए वह कहती रही.. ''कितना स्वादिष्ट खाना है। दाल, सब्जी सब स्वादिष्ट। रोटियाँ कैसी बढ़िया नरम– नरम। कितने अरसे के बाद ऐसा स्वादिष्ट गरम–गरम खाना खा रही हूँ।"
आप तो बताती थीं कि छोटकी बहुत स्वादिष्ट खाना बनाती है।
बनाती थी। अब नहीं। अब तो पानी जैसी दाल। सब्जी बेस्वाद। न ढंग से भूंजती है, न धनिया, न मसाला। रोटी ऐसी कड़ी कि दाल में डालकर गलाती हूँ, तब खा पाती हूँ। शक्कर की मरीज हूँ। चावल की मनाही है। कुछ कहो तो खाँव से करती है।
खाँव से करती है?
हाँ. कहती है खाना है खाओ। आपके बेटे के लिये परहेजी खाना बनाऊँ। आपके लिए अलग। नहीं होगा मुझसे। आपसे भी तो नहीं पचता है।
खुद भी यही खाती होगी।
खुद तो जब बाजार जाती है, होटल में खा लेती है। कचौरी, जलेबी लाकर अपनी अलमारी में रख लेती है। मैं तो गंध से जान जाती हूँ। एकाध बार पकड़ी तो मेरा गला पकड़कर ठूसने लगी–ले खा–खा और मर।
आप तो बताती थीं कि बहुत अच्छी है। बहुत सेवा करनेवाली।
हाँ थी। बदल गई। बड़की को देखकर। बड़की करने लगी कपड़ों का धंधा। ऑन लाईन मँगवाती है–एक–से–एक बढ़िया पोशाकें। साड़ियाँ, सलवार सूट, गाऊन, जींस–टॉप। औरतें आती हैं, लड़कियों आती हैं, घंटों नीचे चलती है खरीददारी, गपशप चाय–पानी, रंगीनी। यह ऊपर से देखती थी। दुकान क्या, हँसती– खिलखिलाती महफिल। एक दिन खुद भी 'दीदी–दीदी' करती नीचे चली गई। बस बड़की ने इसे प्रभाव में ले लिया। यह भी कपड़े का धंधा करने लगी। वह घर में महफिल जमाती है। यह घर घर जाकर बेचती है।
अकेले जाती है बेचने?
बबलू के साथ बाईक में। कपड़ों का बैग लेकर। कई बार बाईक लेकर अकेले भी।
कपड़े कहाँ से लेती है?

इसका एक जीजा है। वह ऐसे ही कपड़ों का धंधा करता है। जिस बड़ी दुकान से वह कपड़े लेता है, उसी से इसको भी दिला देता है। बड़की भी जो कपड़े नहीं बिकते, इसे बेचने के लिए दे देती है।

आप तो बताती थीं कि बहुत सीधी है। धंधा कर लेती है?

अरे अब तो बहुत तेज हो गई है। लाभ का मार्जिन निकाल ही लेती है। जैसे पाँच सौ में बेची साड़ी तो पचास तो पक्का इसका। नहीं नहीं में बीस। जितने में सौदा पट जाये।

बबलू तो आपके पास बैठता बतियाता होगा।

वह तो हर बात में बीबी का पक्षधर। उसे कुछ भी बोलूँ, यह पहले ही ढाल बनकर खड़ा। क्या बताऊँ, कहता है, ''तुम प्रकाश भैया और भाभी के बीच जहर घोलती रहती थीं, अब हमारे बीच भी जहर घोलना चाहती हो। नीचे प्रकाश बीबी का गुलाम, ऊपर बबलू बीबी का गुलाम। सारी गड़बड़ इस कमीनी बड़की के आने से हुई है। कैसा सुंदर हमारा हँसता–खेलता परिवार था। राजकुमारों–सा सुंदर हमारा प्रकाश। बड़े–बड़े घरों से रिश्ते आ रहे थे। राजनांदगाँव की मेयर मनीषा सोनी खुद ही चली आई थी हमारे घर। प्रकाश के साथ बैठकर खूब हँस–हँस कर बतियायी भी थी। उसके साथ शादी किया होता, तो इसे कहाँ से कहाँ पहुँचा दी होती। मगर प्रकाश ने मना कर दिया, राजनीति में लगी लड़की से शादी नहीं करना है। सो मिल गई घर में ही राजनीति चलानेवाली। कितनी झूठी, कितनी मक्कार। बताई थी कि अँग्रेजी में एम.ए. है। यह तो बीए भी नहीं है। अँग्रेजी बोलना सिखाने वाली कोई किताब होती है। उसी में से अँग्रेजी के वाक्य रट ली थी, वही विजया–जया पर जमाती जाये। विजया चालाक। एक बार चुपके से इसका बक्सा खोली। एकदम नीचे दबाकर रखी थी वह किताब। फिर विजया इसे बात–बात में उधेड़े, इसे अँग्रेजी में बोलिये तो भाभी। एम.ए. पास का प्रमाणपत्र दिखाइये। अच्छा बी.ए. का ही निकालिये। शिक्षकों की आवश्यकता निकली है, आप आवेदन कर दीजिये। अच्छा बारहवीं पास का प्रमाणपत्र तो होगा न भई। कुछ पढ़ी–लिखी नहीं है। बाप का साया सिर पर था नहीं। आवारागर्दी करती रही है। शादी के समय ही पेट से थी। हमेशा पीली उल्टी करती रहती थी। प्रकाश को पास नहीं फटकने देती थी। मायके जाकर बैठ गई थी। माँ इसकी अस्पताल में 'दाई' है। अच्छे से साफ–सफाई करवाई, तब आई। मैं उसी समय यह सब बोलती थी, तो सब मुझे धमकाकर चुप करा देते थे। कहते बेटियों की शादी की भारी समस्या सिर पर है। अभी यह सब पचड़ा मत निकालो। मुझे दबना पड़ता था। मायके से क्या घुट्टी लेकर आई कि प्रकाश इसके कब्जे में। ससुर इसके कब्जे में। पेंशन का पैसा इसे देने लगे....

पहले किसे देते थे?

विजया को, क्योंकि वही घर की सब व्यवस्था करती थी। विजया के जाने के बाद इसे देने लगे।

अगर आप घर की सब व्यवस्था सँभालतीं तो आपको देते।

बरसों पहले जब हमारी नई–नई शादी हुई थी, हम नई जगह में घर बसा रहे थे, जो पैसे मिलते, लाकर देते थे। मगर तब इन्हें मिलता ही क्या। दो–चार नोट, चंद सिक्के। खलासी तो थे। कैसे–कैसे घर चलाती थी मैं। मिट्टी की मड़ैया छोटा–सा घर। पुरानी परंपराओं वाला परिवार। घूंघट जरूरी। चौका बर्तन, झाड़ू– पोछा, खाना बनाना, कपड़े धोना सारे काम घूँघट में। बाजार जाना मना था। राशन–पानी ये उधारी लाकर रख देते थे। कभी पैसा माँगू तो इतना बिगड़े, इतनी जल्दी तेल कैसे खतम हो गया, साबुन कैसे खतम हो गया। जब कुछ तनखा बढ़ी, तब तक विजया कुछ बड़ी हो गई थी। पैसा विजया को देने लगे। विजया शुरू से होशियार। पाँचवीं–छठी कक्षा में थी, तभी से। घर में किस चीज की जरूरत है, किसको क्या चाहिये? सायकिल उठाये और ले आये। एक–एक पैसा का हिसाब रखे। धीरे से घर की सारी व्यवस्था, शासन उसी के हाथ में। घर की बेटी। सबका खयाल रखनेवाली। कोई दिक्कत नहीं। मगर ये बड़की। इसको तो जैसे मेरी हर जरूरत बेकार। मेरे क्रीम–पाउडर पर एतराज। मेरे सजने संवरने का मजाक–''किसपर बिजली गिराना है मम्मीजी।'' मेरा डाई खतम हुये कई दिन हो जाये, लाने बोलूँ तो बिगड़े, दम मारिये। बाजार जाऊँगी तो ला दूँगी। आपको खुद ले आना था।

मैं कभी बाजार गई ही नहीं। जाने ही नहीं दिये। शादी के समय चौदह साल की तो थी। माँ–बाप थे नहीं, बड़े भाई–भाभी ने पाला। उन्हीं के बच्चों के साथ खेलती–कूदती बड़ी होने लगी।

भाई को मकान, दुकान, जायदाद सब पिता से मिले थे। 'नाथमल ज्वेलर्स' नामी दुकान थी हमारी। रईसी ठाठ का रहन–सहन था। मगर पाँचवीं छठी कक्षा में थी, तभी से भाभी को मेरी शादी की चिंता होने लगी। किसी ने इन लोगों का नाम सुझाया। भाभी ने आनन–फानन में रिश्ता तय कर दिया। भैया भी जाने कैसे राजी हो गये।

आपलोग जब इतने रईस थे, तो एक खलासी से क्यों शादी तय कर दिये।

असल में भाभी के पिता नामी सुनार थे, मगर जाने क्या हुआ था कि उनका धंधा ठप पड़ गया। भूखों मरने की नौबत आ गई थी। सो फिर उन्हें लोगों ने यह भी समझाया, भाभी के मन में बैठ गया था कि सरकारी नौकरी छोटी सही, उसमें आदमी भूखों तो नहीं मरता। सरकारी नौकरी में तरक्की होती रहती है। असल में भाभी को यह तो पता था कि छोटी नौकरी है, पर किस तरह
की है, यह ठीक से पता नहीं था। न भाभी को, न भैया को। इन खलासी महोदय के पिताश्री क्या करते थे?

करते थे ये भी सोने–चाँदी का धंधा। सर्राफाबाजार में नामी दुकान थी। पर उन्होंने दो शादियों की थीं। पहली पत्नी के मरने पर की थी दूसरी शादी। ये पहली पत्नी के बेटे थे। दूसरी पत्नी के कई बच्चे हुए। यह दूसरी, इनके साथ करे सौतेला व्यवहार। मगर ये तो छम्मकछल्लो सौतेली माँ पर फिदा। घर में सौतेली माँ की चाकरी। दुकान में बाप की। स्कूल की पढ़ाई लस्टम–पस्टम। अठारह–उन्नीस बरस के थे, तभी इन माँ के एक भाई ने समझाया कि इस सौतेले बेटे को कब तक खिलाओगी। कल को दुकान पर कब्जा कर लेगा। तुम्हारे बच्चों का क्या होगा। नई–नई आजादी मिली थी। रेल्वे में कामगारों की भर्ती चल रही थी। भाई–बहन ने मंत्रणा की। इनके पिता इस दूसरी के प्रभाव में थे ही। नवीं कक्षा में थे कि पढ़ाई छुड़ा कर इन्हें रेल्वे में खलासी बना दिया। हमारी भाभी को यह खलासी भा गया कि सरकारी नौकरी है, ऊँचे जायेगा ...

सच में ऊंचे गये भई ये तो। खलासी से लगे थे, मेलड्राईवर तक पहुँच गये।

मेरे कारण।

आपके कारण?

हाँ, शुरू में जब यह मुझे छोड़कर काम पर जाते थे, मैं घर में रहूँ सास के कब्जे में। एक तो सास। ऊपर से सौतेली। क्या जुल्म न करे। पौ फटने से रात गहराने तक काम। घूंघट निकाले हुये। तिसपर बात–बात पर दे धड़ाधड़, कपड़े ठीक से नहीं धोई, पोंछा ठीक से नहीं लगाई। धान नहीं कूटी, मसाला नहीं पीसी। कई बार तो सिर दीवार से दे मारे। मगर एक बात है, उसकी मार कुटाई खाकर में घर–गृहस्थी के सारे काम सीख गई। घर बढ़िया जमाकर सजाकर रखना। तरह–तरह के अचार, पापड़, बड़ियाँ बनाना। एक से एक व्यंजन बनाना। बढ़िया स्वादिष्ट खाना बनाना, भाभी के घर तो बच्ची थी। दिन भर खेलती–कूदती कुछ नहीं सीखी थी।

आप कह रही थी खलासी से ड्राइवर बने, आपके कारण।

बिल्कुल। जब रेल्वे मैं इन्हें दूसरी जगह भेज दिया गया, खाने–पीने, रहने सब तरह की दिक्कत होने लगी, तो मुझे साथ ले जाना पड़ा। एक कमरे की झोपड़ी–सा घर। मिट्टी का फर्श। न पानी, न बिजली। मुँह अंधेरे उठकर चौक के कुओं से पानी भरकर लाऊँ। क्योंकि पौ फटते ही भीड़ हो जाये। खूब लड़ाई हो। साहब लोगों से पुराने ड्रम, टव, माँग लिये थे। मेरे दहेज के कुछ बर्तन घड़े पतीले वगैरह सासू माँ ने दे दिये थे। सब में दो घंटे पानी भरूँ। फिर पूरे घर में झाड़ू लगाऊँ। गोबर से लीपूँ। नहा–धोकर, चाय नाश्ता बनाऊँ, इनके लिए टिफिन तैयार करूँ। इनके जाने के बाद, बर्तन माँजना, कपड़े धोना, सुखाना, तह करके रखना, काम का अंत नहीं। चावल–दाल, अनाज, तेल, मसाले–ये महीने भर के लायक दुकान से उधारी लाकर रख देते थे। कोई सस्ती सी सब्जी काम से लौटते हुए ले आते थे। फिर भी कभी बेसन की कमी हो, कभी तेल की। कभी धनिया–मिर्च ही नहीं। तब भी इतना स्वादिष्ट खाना बनाऊँ कि लोग उंगलियाँ चाटते रह जायें। मेरी पाक विद्या के चलते ही इनकी तरक्की हुई।

इनकी तरक्की आपके पाक विद्या के चलते?

बिल्कुल, हुआ यह कि एक दिन ये रोज की तरह टिफिन लेकर गये थे। इनके 'फोरमैन' का टिफिन आया नहीं था। यह बोले– ''साहब! आज आप मुझ गरीब की टिफिन से ले लीजिये।'' साहब बोले–''अरे नहीं, तुमको कम पड़ जायेगा।'' ये बोले–''साहब मेरी घरवाली खाना ज्यादा भेज देती है। मैं पूरा खा नहीं पाता।'' बोले–''लाओ भाई, थोड़ा–सा दे दो।'' इन्होंने दिया– एक प्लेट में दो पराठे, सब्जी, थोड़ी–सी मीठी चटनी। साहब तो उंगलियाँ चाटने लगे। कहने लगे–''जब पराठा

सब्जी इतना स्वादिष्ट बनाती हैं, तब खाना कितना स्वादिष्ट बनाती होंगी तुम्हारी पत्नी।'' वे बोले–''साहब! एक दिन खाकर देखिये न मेरे घर का खाना।'' बोले–''बिल्कुल खाऊँगा एक दिन तुम्हारे घर। बोलो–कब बुला रहे हो।'' ये बोले–''जब आप कहें''साहब बोले–''ये इतवार ठीक रहेगा।''पूछो मत, उस दिन ये क्या उछलते हुए घर आये। 'फोरमैन साहब' मेरे घर खाना खाने आ रहे हैं। मेरी उत्कंठा का क्या कहना। तरह–तरह से सँवारू घर को। इतवार आया। खूब मन से बनाया खाना–पुलाव, पूड़ी, मटर पनीर की सब्जी, करेले का भरवाँ, दही बड़े, खीर। मिट्टी का फर्श

गोबर से लीपकर उसपर सुंदर रंगोली बनाई। रंगोली के सामने लकड़ी का पटा रखा। पटे पर साहब बैठे। रंगोली पर भोजन की थाली। साहब खाते जायें, तारीफ करते जायें। मैं थोडा–सा घूंघट निकाले परस रही थी। साहब मजाक करने लगे–''भामी जी! सिर्फ झलक क्या दिखा रही है, चाँद–सा मुखड़ा तो दिखाइये।'' ये भी बोले–''घूंघट हटा दो।'' घूंघट खिसका दिया, पर सिर ढंका ही रहा। अगली बार जब साहब खाने आये, तो एक खूबसूरत गजरा लेते आये–''इसे तो मैं भाभीजी के बालों में खुद ही लगाऊँगा।'' मैं तो लाज से गड़ गई। ये हँसते रहे। साहब मेरे पास आये। मुझे बाहों से पकड़कर पीछे घुमाया। सिर से पल्ला हटाया। मोटी सी चोटी में दमकता गजरा लगाया। सिर पकड़कर प्यार से मेरा मुखड़ा देखने लगे। दीवाने से। मेरे गालों को चिकोटकर कहे–''कहाँ से ऐसी परी तुमको मिल गई घोचूराम! कोई फिल्मी हिरोईन इनकी बराबरी नहीं कर सकती। क्या बताऊँ मेरी दशा क्या हो। तनमन लरज रहा। कुछ न बोल पाऊँ। ये हँसते रहें। साहब की कृपा से हमें रेल्वे कॉलोनी में छोटा क्वाटर मिल गया। पलंग, मेज–कुर्सियाँ आ गई। साहब आते तो बकायदा मेज–कुर्सी में बैठकर खाना खाते। मैं भी पूरा घर सजाकर रखती। खुद खूब सजकर रहती। साहब पीते तो थे ही, जाने कौन–कौन सा इत्र लाते। मुझपर छिड़ककर मुझे पागल कर देते। साहब जैसा नचायें, वैसा नाचूँ। साहब मेरे घर कभी भी टपक पड़ते। कभी कहते–आज तुम्हारे हाथ का हलुआ खाने का मन है। कभी कहते–बारिश होने लगी तो सोचा तुम्हारे हाथ के पकौड़े खाऊँ। साहब के आगे मैं एकदम बेबस। पर ...

पर क्या?

साहब के सामने मेरे ये खलासी पति हें–हें करते रहते। कहते– ''क्या है साहब, आपका घर है, जब चाहे आइये।'' अकेले में मुझे दे धड़ाधड़, लात–घूंसे। अधमरा कर देते। बके जाते–रंडी–वेश्या। पति से मुझे नफरत हो गई, शुरू के दिनों में ही। साहब मुझे असली कदरदान लगते। मेरी सुंदरता की कदर करनेवाले, मेरी पाक कला की कदर करनेवाले, मेरी साज–सज्जा रख रखाव की कदर करने वाले। मुझपर मरने वाले दीवाने। एक मेरा पति कुत्ता। सूअर। मगर इन फोरमैन साहब ने और साहबों से मेरी प्रसंशा की होगी, और भी साहब आने लगे मेरे घर। फोरमैन साहब से भी बड़े साहब। सब एक से एक दीवाने। खाने–पीने वाले। एक अनार, सौ बीमार। मैं साहबों की चहेती। रानी। महारानी। जो कहूँ, सो हो। मेरे पति की तरक्की होती गई। फोरमैन बने, फिर मालगाड़ी ड्राइवर, पैसेंजर ड्राइवर, अंत में मेल ड्राइवर। मिट्टी के झोपड़े से रेल्वे क्वार्टर। छोटावाला, फिर बड़ावाला, फिर शानदार बाग बगीचेवाला बंगला। रेल्वे के कामगार मुलाजिम मेरे घर आकर सारे काम कर जाते। सब मेरे कारण। और मैं थी रोज मार खाऊँ। मार खाऊँ तो मैं भी खूब कहूँ कि आज तू जो कुछ है–मेरे करण है हिजड़े। मार के निशान देखकर साहब लोग कहते–''छोड़ो इस राक्षस को। हम तुम्हारा बढ़िया इंतजाम कर देते है। एक रात तो मैंने पूरी तैयारी कर ली थी भागने की। साहब लोगों ने मेरा बढ़िया इंतजाम कर रखा था। आखिरी विदा के पहले बच्चों को देखने गई। विजया और प्रकाश सोये पड़े थे। मासूम बच्चे। मैं बच्चों को चूमने लगी कि प्रकाश ने आँखें खोल बाहें फैला दी। बस फिर मैं बंध गई। भारी त्याग किया है मैंने बच्चों के कारण। राज करती मैं... और खो सी गई।

मैंने टोका–आप बच्चों को लेकर अपने मायके चली जातीं।

भाभी के बच्चे जवान हो चुके थे। वे मुझे पसंद नहीं करते थे।

फिर आपसे अपने ये आशिक भी नहीं छोड़े जाते होंगे।

अरे आशिक वह हँसने लगीं, अब सिर्फ साहब लोग ही थोड़े थे। वह थी रेल्वे कॉलोनी। साहब लोगों के मेरे घर आने से मेरी तारीफ कॉलोनी में फैल चुकी थी। कॉलोनी के मर्द मेरे घर आने का बहाना ढूंढते। मेरे पति पर उपकार करने का अवसर ढूढ़ते। मगर एक बात है। कॉलोनी में ऐसी औरतें भी थीं, जो पति गाड़ी लेकर निकल जाते, तो अपने आशिकों को बुला लेतीं। अपना मतलब खूब साधती पर अपनी घर–गृहस्थी पर आँच नहीं आने देतीं। उनकी बातें बतियाकर दूसरी महिलायें खूब हँसती, मगर उन्हें बुरी औरत नहीं कहतीं। उनकी संगत ने मुझे दुनियादारी सिखाई। आपकी बेटियाँ जब मेरे सेंटर में आने लगी थीं तो कुछ लोगों ने मुझे आपके बारे में बताया था।

वह एकदम सतर्क। नहीं जी, मेरी बेटियाँ एकदम शुद्ध चरित्र की है। आपने खुद परखा होगा। विजया शुरू से कॉलोनी के अच्छे लोगों के घर आती जाती। स्कूल, कॉलेज में भी उसकी सब सहेलियों नामी खानदानी परिवारों की। भारी संस्कारी। जया उसकी चेली। इन लार टपकाते लोगों का आना तो तभी बंद हो गया जब प्रकाश कुछ बड़ा होने लगा। चौदह–पंद्रह बरस में ही यह भरा पूरा जवान दिखने लगा था। मस्त जवान खूबसूरत दमदार। मर्द हो तो ऐसा। उसके तेवर देख सभी लार टपकैया खूसट सटक लिये। मैं तो उसपर मुग्ध ही हो गई। उसे देखकर प्यार उमड़ता। उसके प्यार के आगे सब बेकार। मगर मेरे पति की नफरत नहीं गई जी। नफरत और शक। जिन दिनों दूसरा बेटा सुभाष पेट में था, ये उसे मार डालना चाहते थे कि उनका बेटा नहीं है। जहर लाकर बोले थे–इसे खा। आखिर मैंने भाभी को खबर भेजी। भैया आकर मुझे ले गये। वहीं प्रसव हुआ। नन्हें से बच्चे को उन्होंने रख लिया और मुझे यहीं पहुँचा दिया।

यह मित्तल का क्या किस्सा है?

यह एकदम सकपका गई। पर फौरन हे–हें करने लगी। अरे मित्तल के साथ तो चक्कर था मंजूरानी का। मंजू चालाक। खेली खायी औरत। मैं सीधी सादी। जहाँ जाये मुझे साथ ले जाये। उस दिन बोली–मित्तल के बंगले में आम फले हैं। चल, दो–चार तोड़ लाते हैं। मैं चली गई। मित्तल अकेला। पर रहता बहुत शान शौकत से। मुझे देखकर तो बहुत खुश आज सूरज पश्चिम से निकला था क्या भाई। मित्तल को मेरी खुशामद करते देख मंजू महारानी जल गई। घर के भीतर चली गई। दो मिनट में मित्तल भी। काफी देर हो गये। आखिर में भीतर गई। दोनों बाथरूम में बंद। आवाज सी–सी, हाय–हाय। कई–कई। दोनों बदमाश चढ़े थे मस्ती में। जान–बूझकर खूब भड़भड़ाई दरवाजा। भीतर से मित्तल बोला– आपको भी आना है क्या। बाप रे! मैं भाग आई। फिर कभी नहीं गई मित्तल के घर। मगर मित्तल मुझे कहीं भी देख ले, तो खूब हँसे। बदमाश ईशारे करे।

अपनी रंगीन जवानी के किसे बताते–बताते वह मौज में आ जाती। मगर तभी कोई मनहूस बयार किसी और दुनिया में ले जाती। क्या बताऊँ बहन! इस खलासी की तरक्की के लिए मुझे क्या–क्या भुगतना पड़ा। जाने भाभी की मति में क्या हो गया था, मुझे यहाँ धसा दिया। बड़े–बड़े घरों से रिश्ते आ रहे थे मेरे लिए। तुमने तो नाम सुना होगा मुंगेली के 'हीरापन्ना ज्वेलर्स' का। सर्राफा बाजार में धाक है इनकी। एक शादी में इन लोगों ने मुझे देख लिया। तेरह चौदह की उम्र। तिसपर क्या रूप, क्या शृंगार। चाँदी–सा बदन, सितारों जड़ी लाल लहँगा चुन्नी। गले में चमचमाता जड़ाऊ हार, कान में झलमलाता झुमका। हाथों में खनखनाती चूड़ियाँ। मोटी चोटी पर मदमदाता गजरा। चाँद से चेहरे पर दमकता माँगटीका। सहेलियों के साथ मस्त नाच रही थी। सब कह रहे थे किसके घर की लड़की है भाई? 'हीरापन्ना' वाले कहने लगे, इसे तो हम अपने घर की बहू बनायेंगे। आज हीरापन्ना का देश–विदेश में नाम है। उनके घर गई होती, तो रानी की तरह राज कर रही होतीं। समाज में कितना सम्मान होता..

मैं उसके बुढ़ापे, गद्‌गदाये चेहरे को देखती रह जाती।

मगर वह बही जा रही है, अरे तुम्हें क्या बताऊँ, आज तक लोग मेरे उस रूप, उस चमक को याद करते हैं। पिछले दिनो एक रिश्तेदार की शादी में राजनांदगाँव गई थी मैं। एक सज्जन उस भीड़भाड़ में मुझे दूर से देख रहे थे। मिलने आये। क्या उनका रूप! क्या उनकी राजसी पोशाक। सतलड़ी हार। एकदम किसी

रियासत के राजा हो जैसे। हाथ जोड़कर नमस्ते किये। कहने लगे, नहीं पहचान रही है मुझे। मैं 'जमुनाप्रसादज्वेलर्स' वाला जमुना प्रसाद हूँ। बाप रे! मैं तो छुईमुई हो गई। इतनी जिद किये कि मुझे उनके घर जाना पड़ा। क्या शानदार बिल्डिंग, क्या शानदार रहन–सहन। उनकी पत्नी भी ऐसी सुंदर जैसे महारानी हो। हीरे पन्ने जड़े कम से कम सौ तोले का जेवर उनके शरीर पर। उनके सामने मैं तो भिखारन–सी। बहुएँ भी उनकी एक से एक रूपवती सुंदरी। गहनों से लदी। सबके सामने मजे ले लेकर बताने लगे... उन दिनों मैं दसवीं में पढ़ता था। मामा के घर मुंगेली गया था। मामाजी मुझे लेकर अपनी बिरादरी के कुछ प्रमुख घरों में गये। इनके घर भी गये। चाय लेकर यही आई थी। मैं तो देखता ही रह गया। वक्त तो बदला जरूर है, पर जलवा बकरार है।

कितने राईस शाहजादे उनके लिए तरस रहे थे, कितने अफसरान उनपर लट्टू थे मित्तल जैसे कितने दिलफेक आशिक। सबकुछ भूला दिया प्रकाश के प्रेम में पड़कर। मगर उसी प्रकाश ने दिया तमाचा खींच के, जब लड़ाई–झगड़े के दौरान यह बहू पर गरजने लगी थी–''हाँ घर भी मेरा है और प्रकाश भी। तू उसका खून पीने वाली डायन है।''

बेटे–बहू, नाती–पोते सबसे तिरस्कृत, निरादृत वह अपनी सुनहली दुनिया में उठती रहती, मगर मैंने उनका मित्तल कांड पूछ दिया। वह जमीन पर गिरी। कभी सोचा नहीं था कि यह पढ़ने पढ़ाने में खोई रहनेवाली मैडम भी कुछ जानती होगी। फौरन जमीनी स्तर की बात करने लगी–मैं बैठे–बैठे खानेवाली औरत नहीं हूँ बहन। झाड़ू लगा लेती हूँ। बैठे–बैठे बर्तन माँज लेती हूँ। कपड़े धो लेती हूँ, सब्जी सुधार लेती हूँ। अपना काम खुद कर लेती हूँ। आखिर मैंने टोका–जब आप अपना काम खुद कर लेती हैं, तो आप मेरे घर क्यों आई? बबलू थोड़े दिन के लिये ही गया है न रायपुर। रह लेतीं अकेले ऊपर में। नीचे प्रकाश का परिवार था ही।

अकेले में प्रकाश आकर मेरा गला दबा देता।

मैं सन्नाटे में उसका मुँह देखने लगी।

कुछ–कुछ कागज लेकर आता है, कहता है–इसमें दस्तखत कर। मालूम, ऐसी–ऐसी गंदी गाली देता है मुझे। बता नहीं सकती।

मैं उसकी खतरनाक स्थिति समझती। दया भी लगती, मगर परेशान भी हो जाती। पहले दिन से ही, क्योंकि पहले दिन मैंने उसकी बातें झेल ली थी। मगर सुबह जब टॉयलेट गई तो देखा पूरा पाखाना कमोड के चारों और फैला हुआ। जाकर बोली यह आपने क्या किया?

वह मेरा मुँह देखने लगी... क्या?

जाकर देखिये टॉयलेट में।

गंदा हो गया है क्या। मैं अभी साफ कर देती हूँ, शुभ्रा वह विनम्र मिठास से बोली... मुझे रात में पाखाना लग जाता है न। अँधेरे में ठीक से दिखा नहीं।

आपने लाईट क्यों नहीं जलाई। मैंने तो पंखा, बिजली, टी.वी. सबके बटन आपको कल ही समझा दिये थे।

अरे, मुझे ठीक से दिखता नहीं है न। चल न, अभी ठीक से साफ कर देती हूँ। किसी तरह बाल्टी में पानी लिये, दीवाल पकड़कर थेपते–थेपते गई। आई... देख ले बहन, ठीक से साफ हुआ है या नहीं। मैं गई। देखा, ठीक से साफ तो नहीं ही हुआ था। पानी डालकर खुद ही साफ किया।

जितनी बार टॉयलेट जाये, उतनी बार यही हाल। इससे ठीक से साफ न हो। मैं ही करूँ। तिस पर इसका यह राग, ''आजकल सब घरों में नये जमाने का टॉयलेट होता है न, आराम से बैठो और पानी डाल दी। सब साफ। तू तो शुभ्रा नया टॉयलेट बनवा ले।'' मिजाज मेरा इस कदर खराब... इस विजया को तो समझना था, जिसे अपने शरीर पर नियंत्रण नहीं, उसे नहीं भेजना था ऐसे गरीब घर में, जहाँ टॉयलेट पुराना। मालकिन खस्ताहाल।

शरीर में नियंत्रण नहीं, मगर खाने में चटोर। पहले दिन ही टिफिन आया चावल–दाल, सब्जी रोटी। उसने खायी सब्जी रोटी दाल। चावल सिर्फ दो चम्मच। उसके हिस्से का डिब्बेभर चावल घरा रह गया। दो रोटियाँ भी बच गईं। थोड़ी–सी दाल भी बचा दी उसने। मैंने अपना टिफिन भरपेट खाया। दो रोटियों मेरी भी बच गई। पूछा–''रात में आप क्या खाती हो?'' बोली–''तुम क्या खाती हो। बतायी–''मैं तो रात में दूध–रोटी खाती हूँ।'' बोली–''में भी दूध–रोटी खा लूँगी।''

मैंने दूधवाले को फोन कर दिया–''भैया आज शाम आधा लीटर दूध ज्यादा दे देना।''

रात मैंने दूध उबाला। कटोरेदान में डाला। खाने की मेज पर दूध का कटोरा और रोटी का डिब्बा उसके सामने रखा। पूछा–दूध में शक्कर डाल हूँ। बोली–नहीं में शक्कर नहीं लेती। गुड़ लेती हूँ। चाय में भी गुड़ ही लेती हूँ। मैंने गुड़ का डिब्बा उसके सामने लाकर रख दिया। अपने लिए दूध रोटी निकालने लगी कि ख्याल आया। सबेरे इसने चावल खाया ही नहीं था। उसके टिफिन के डिब्बे खोलकर देखने लगी. . डिब्बे भर चावल, थोड़ी–सी दाल भी। इस समय कोई गाय या कुत्ता भी नहीं कि यह बचा हुआ चावल दाल उसे दे आऊँ। बोली–आप तो दूध रोटी खाइये। मैं यह आपका सुबह का छोड़ा हुआ चावल दाल खाऊगी। अनाज मुझसे फेंका नहीं जाता। दूध में गुड़ डालकर मजे से दूध–रोटी खाती हुई बोली–अनाज मुझसे भी नहीं फेंका जाता बहन। अन्न देवता है। फेंकना नहीं चाहिये।

अब रोज का यही हाल। मैं रात में उसका छोड़ा हुआ चावल–दाल खाऊँ। वह दूध रोटी खाये। कहती जाये–इतना बढ़िया दूध रोटी खाने के लिए मुझे कितने बरसों के बाद मिला है। कटोरा दिखाती बोले–देख कितना साफ से खाया है मैंने। जया के ससुर भी कहते थे–आप एकदम साफ–सुथरा खाती है। जितना जरूरी हो थाली में उतना ही लेती है।

आप अभी जया के घर क्यों नहीं चली गई। पहले रही तो है न जया की ससुराल में।

ऐसे रही थी कि जया के सास–ससुर चारों धाम की यात्रा पर जा रहे थे। मुझे बोले कि घर में कोई बड़ा नहीं है, आप कुछ दिन हमारे घर रह जाइये। मैं गई। क्या शानदार जया की ससुराल। क्या गुलाब बिछे से टाईल्स, क्या महाराजा सोफे, क्या झिलमिलाता झूमर, क्या लहराते रेशमी परदे। क्या बाग बगीचे। क्या नौकर–चाकर। बहुत मजे में रही है। पर क्या बताऊँ। वह लोग तीरथ से आ गये। पूजापाठ, हवन सब हो गया। मुझे कोई लेने ही न आये। समधिन तो बात सुनाये, ये समधी भी... आप अपने घर में नवरात्रि नहीं मनाती क्या, दीवाली भी नहीं मनाती क्या। दूसरे के घर आपसे इतने–इतने दिन कैसे रहा जाता है। जया कई बार फोन की, तब आया प्रकाश लेने।

आप मायके नहीं जाती क्या?

नहीं। भाई के पोती की शादी में निमंत्रण आया था। प्रकाश अपने परिवार के साथ गया था। वहीं सबसे कह दिया–''मम्मी अब कहीं आने जाने लायक नहीं है।' जाति–बिरादरी के सभी कार्यक्रमों में प्रकाश अपनी पत्नी के साथ जाता है। मन कितना होता है सबसे मिलने–जुलने का। विशेषकर पुराने लोगों से। मगर प्रकाश बिगड़ जाता है–''तुम सुगर की मरीज, दिल की मरीज रक्तचाप की मरीज। सब गड़बड़। तिस पर जबतब पेशाब–पाखाना आ जाता है। चला ठीक से जाता नहीं। कौन तुमको पकड़कर ले जायेगा बार–बार टॉयलेट।

कमी दारुण वास्तविकता हावी होने लगे तो गिड़गिड़ाना शुरू...शुभ्रा बहन! मुझे ले चल न किसी अच्छे वकील के पास जो पेंशन का पैसा दिला दे। पेंशन का पैसा तो पत्नी को मिलना चाहिये न। जमीन जायदाद के मामले में मेरे हक में कागज तैयार कर दे। नहीं तो ये लोग ऐसे ही मारपीट करते रहेंगे।

आप विजया से कहिये, वह ले जायेगी किसी अच्छे वकील के पास।

उसे बिल्कुल फुरसत नहीं है।

आपके बिरादरी की जो पंचायत होगी, वहाँ जाकर अपनी बात कहिये।

ये लोग कभी नहीं जाने देंगे। कहते हैं बदनामी होगी। तू तो मुझे 'अनिरुद्ध महाराज' के आश्रम में पहुँचा दे। अनिरुद्ध महाराज ऐसे ही किसी को नहीं रख लेते। पहले सारी बातें पता करते हैं। घरवालों से बात करते हैं।

विगत की हसीन रंगीन दुनिया में उड़ती–फिरती वह जैसे स्वीकार कर ही नहीं पा रही थी कि अब वह न वैसी सुंदर है, न सक्षम। बेटे, बेटियों, बहुओं, नाती पोतों से तिरस्कृत, रिश्तेदारों, परिचितों से निरादृत उसे मेरा घर बहुत रास आ रहा था। वह स्पष्ट देखती, सुबह से ही मेरे पाँव, पाँव से नहीं लगते। तड़के उजाला होने के पहले ही उठ जाती हूँ। धरती माँ को प्रणामकर पूजा घर में चली जाती हूँ। अपना रोज का पाठकर झाड़ू और सूप लेकर घर का बाहरी हिस्सा साफ करने जाती हूँ,

क्योंकि रात में जाने कहाँ–कहाँ से गोमातायें आकर मेरे घर की दीवारों से सटकर विश्राम करती है। जाते हुये भरपूर गोबर, गोमूत्र, कीच आदि की सौगात दे जाती है। उनके साथ लगे कुते भी भरपूर गंदगी की सौगात दे जाते हैं। बाहर की सफाई कर आँगन की सफाई करती हूँ। नित्यकर्म से निपटकर, बढ़िया से साफ–सुथरी होकर नाश्ता बनाती हूँ। चाय बनाती हूँ गुड़ की, क्योंकि वह गुड़ की ही चाय पीती है। जब तक चाय–नाश्ता चलता है, उसका आत्म–माहात्म्य चलता रहे, ''तुझे क्या बताऊँ उस दिन मैने भी प्याजी बड़े बनाये थे। अब मेरे बनाये बड़ों का क्या गजब स्वाद। साहब लोग दारू पिये हुये थे। रेल्वेवाले तो दारू पीते ही हैं। मेरे बड़े खाकर और मस्ती में आ गये–''मैं तो बनाने वाले का हाथ ही चूम लूँ।'' एकदम पकड़कर दुलार करने लगे। सब एक साथ। जैसे मैं स्वर्ग की अप्सरा होऊँ। मैं कभी भरवाँ पराठे बनाऊँ तो उसकी टिप्पणी।

बड़की भी भरवाँ पराठे बढ़िया बना लेती है, सीखी तो मुझसे ही है, पर मानती नहीं।

नहाने के पहले मैं बाथरूम, टॉयलेट साफ कर रही हूँ, आँगन की नाली साफ कर रही हूँ, बाड़ी साफ कर रही हूँ, वह सब मजे से देख रही है। कह रही है–मेरी विजया भी ऐसे ही दिनभर खटती रहती है। मैं पूजाघर में पूजा–पाठ, जप आदि संपन्न करके आ रही हैं।

वह कह रही है–पहले मैं भी करती खूब पूजा बहन...।

विजया फोन में बोली थी–मम्मी! बैठे–बैठे खानेवाली औरत नहीं है, यह खुद भी बोली थी, मैं बैठे–बैठे खानेवाली औरत नहीं हूँ, मगर यहीं मजे से बैठे–बैठे खा रही थी। खाने के बाद बैठ– बैठी अपनी जूठी थाली में हाथ धो रही है। मैं जूठे बर्तन उठा रही हूँ। उसकी पानी भरी जूठी थाली सँभालकर ले जा रही हूँ। यह कह रही है, सँभालकर ले जाना बेटा। आज वह मुझे बेटा कह रही है, पहले यह खुद को मुझसे छोटी उम्र का बताती थी। विजया की शादी होने के बाद इनके घर 'श्रीसत्यनारायण' भगवान की पूजा हुई थी। पूजा के बाद इसने पंडितजी के पैर छूकर प्रणाम किया फिर मेरे पैर छूने लगी। मैं मना करने लगी, तो बोली–अरे बाप ब्राह्मण है। विद्वान ब्राह्मण। ब्राह्मण के आशीर्वाद से जीवन धन्य होता है। ऐसे अनेक मांगलिक अवसरों पर इसने वही श्रद्धा से मेरे पैर छुए थे कि ब्राह्मण के आशीर्वाद से जीवन धन्य होता है। आज ब्राह्मण से बेहिचक जूता साफ करवा रही है। अपना पाखाना साफ करवा रही है। सेवा करवा रही है।

मुझे उससे बात करने का मन ही न हो, तब एक दिन कह बैठी आपने तो बढ़िया खिलाखिलाकर बड़े–बड़े साहबों को दीवाना बनाया है, चलिये आज का नास्ता आप बनाईये।

फौरन दीन हीन बन गई, नहीं बना सकती बहन! ठीक से दिखता नहीं। झारा करछुल थोड़ी देर पकड़े नहीं रह सकती।

अच्छा, ये मेथी की भाजी ही तोड़ डालिये। आज मेथी के पराठे बना लेंगे, मैंने बड़ी–सी थाली में मेथीभाजी रखकर उसके सामने मेज पर रख दिया।

मन मारे कुर्सी पर बैठी, चश्मा लगाकर भाजी तोड़ने लगी। भाजी थाली में रखे, डंठल नीचे गिराती जाये। थोड़ी देर में जाकर बिस्तर में लेट गई।

मैंने फर्श पर गिरे डंठल का कचरा समेटकर कचरे की टोकरी में डाला। भाजी की थाली लेकर उसके सामने बैठ भाजी तोड़ने लगी। बोली–समझी न, आप सच में बैठे–बैठे खानेवाली है।

उसने बुरा नहीं माना, असल में मेरे कुहनियों में दर्द है न। गिर गई थी छत से। हथेलियाँ जमीन में टेककर उठने की कोशिश की तो कोहनियों और मुचक गई। क्या बताऊँ कितना दर्द रहता है कोहनियों में। जरा–सा मुड़ने से प्राण निकलते हैं।

फिर नहाना–धोना, शौचादि कैसे करती हैं?

करती हूँ दर्द झेलती हुई।

मैं उसे देखती रह गई।

कहने लगी दर्द कोई एक है? दिल की मरीज हूँ। छाती में जब–तब भयानक दर्द होता रहता है। गोली खाकर जिंदा हूँ। रक्तचाप जब– तब बढ़ जाता है। सुगर अलग। सिर दर्द तो इतना भीषण। सबकी गोली लेती रहती हूँ। अभी भी सब गोलियाँ, दवाईयाँ लेकर आई हूँ। कान में ठीक से सुनाई नहीं देता। दाँत का दर्द तो प्राणलेवा। आँख में दिखना तो एकदम बंद हो गया था। भगवती मंदिर के अस्पताल में गरीबों का मुफ्त इलाज होता है। बबलू मुझे वहीं भर्ती करा दिया। मेरी आँखों का ऑपरेशन हुआ। कोई झाँकने तक नहीं आया। बेचारे मंदिर के सेवादारों ने ही सेवा की।

मंदिर के अस्पताल में तो कान का, दाँत का सभी का मुफ्त इलाज होता है।

एकदम गिड़गिड़ाने लगी–ऐ शुभ्रा! ले चल न मुझे। तू करा दे न मेरा इलाज। तेरे सिवा मेरा कौन है?

इतने बेटा–बेटी, नाती पोतेवाली, महल–दुमहलों में रहनेवाली, मुझ खस्ताहाल पुराने मकान में किसी तरह गुजारा करनेवाली से चाहे कि मैं उसे अस्पताल ले जाकर उसकी रोग–व्याधियों का इलाज कराती रहूँ। वकीलों से मिलकर उसका हक दिलवाऊँ। उसके बेटे, बेटियों, बहुओं से उसके लिए लड़ती रहूँ और यह मेरे ही घर में मुझपर रौब जमाती जमी रहे। इसे बोलना, टोकना, कुछ पूछना खतरा है। सो भरसक मैं इसके सामने पडू ही न। दिनभर तो मुझे काम ही काम। शाम का समय ही कुछ खाली। मेरा यह समय गारत न करे, सो मैं इसके हाथ में टी.वी. का रिमोट धरा दूँ कि आप अपनी पसंद का कार्यक्रम देखिये और अपना मोबाईल लिये दूसरे कमरे में चली जाऊँ। मोबाईल खोलकर कुछ देख ही रही हूँ कि विजया का फोन। नाम देखते ही मैंने मोबाईल लेजाकर उसकी मम्मी को दे दिया...विजया का फोन। उसका चेहरा खिल गया। लहक–लहक कर बता रही है, एकदम बढ़िया हूँ यहाँ। तुमलोग बिल्कुल चिंता मत करो। खाना बढ़िया रहता है। नाश्ता यही बनाती है। कल सबेरे उपमा बनाई थी, आज ढोकला। हाँ, अच्छा बनाती है। नहीं प्रकाश मिलने नहीं आया है। कुछ देर सुनने के बाद मैं आँगन में चली गई। बाड़ी में घूमती रही।

कोई घंटे भर बाद यह धसक–धसक चलती आई, ले शुभ्रा! तू भी विजया से बात कर ले। मैंने मोबाईल लिया। बंद कर दिया। विजया बार–बार फोन लगाती रही।

अगले दिन शाम को उन्हें फिर टीवी के सामने बैठा छोड़कर रिमोट धराकर में अपने सोने के कमरे में चली गई। बिस्तर पर तकिये का टेक लगाकर बैठ अपने मोबाईल में कुछ कुछ देखने लगी कि यह मुस्कराती हाजिर, क्या देख रही हो शुभ्रा?

देख रही हूँ अपनी पसंद का कार्यक्रम मैंने उसकी तरफ बिना देखे कहा।

वह बिस्तर में चढ़ मुझसे सटकर बैठ गई। मुँह आगे कर देखने लगी। प्रधानमंत्री का कोई कार्यक्रम चल रहा था। कहने लगी– देखो तो इस मोदी को। इतनी सुंदर स्मृति ईरानी को हटाकर इतनी काली कलूटी द्रोपदी को रख लिया।

मन किया हरामखोर का सिर फोड़ दें कि घंटी बजने लगी। उछल पड़ी. विजया का फोन।

समझ गई मैं। विजया ने कल कहा होगा, शाम को इतने बजे में फोन करूँगी, तुम उसके पास रहना।

सो यह चली आई है। मोबाईल उसके हाथ में पटककर मैं बाड़ी में चली गई। टहलती रही।

अंधेरा गहराने लगा। भीतर आई। आते देखा तो कह रही है आ गई है, आ गई है ले कर बात। मुझे कह रही है–ले न शुभ्रा, कर ले न विजया से बात।

मैंने मोबाईल लेकर बंद कर दिया।

विजया बार–बार फोन लगा रही है। मैं फोन उठा ही नहीं रही हूँ। वह वीडीओ काल लगा रही है। लगातार। वह ही नहीं, उसकी बहन जया भी। इधर यह मेरे पीछे पड़ी है, कर ले न शुभ्रा बात। आखिर मैं भड़क उठती हूँ–विजया की तनख्वाह नम्बे हजार है। वह एक सस्ता–सा मोबाईल लेकर तुमको नहीं दे सकती। तुम्हारे कारण मैं अपने मोबाईल में अपने पसंद का कार्यक्रम नहीं देख सकती। टीवी नहीं देख सकती।

मैं तुम्हारी तकलीफ समझती हूँ बेटा।

आवाज उसकी अत्यंत मीठी। इतनी विनम्र। काम वही, जो उसके मन भाये। बैठक में उसका राज। रिमोट उसके हाथ में। मोबाईल जब कभी हथिया ले। पूरे घर में जैसे उसकी मर्जी। मैं तो जैसे उसकी नौकरानी। उसके जूठे बर्तन उठाने वाली। उसका पाखाना साफ करने वाली। वह तो वह, उसकी बेटियों का भी वही हाल। मुझे जैसे अपनी लाईन में लाने पर तुली। मैं फोन नहीं उठा रही हूँ तो सतर्क हैं। जैसे ही देख रही हैं–मैं ऑनलाईन हूँ, फौरन फोन कर रही है। मुझसे भी तो रहा नहीं जाता।

मोबाईल ले जाकर उसकी मम्मी को धरा ही देती हूँ। माँ बेटी को बात करने से कैसे रोकूँ। चार दिन की ही तो बात है। सह लूँ।
कि इसी बीच एक दिन बबलू का फोन आया। उसका नाम देख मैंने बात कर ली–''बबलू! तेरी आँख का ऑपरेशन कब है।''
वे लोग 'सुगर लेवल' ठीक करने का इलाज कर रहे हैं मौसी। सुगर लेवल ठीक हो जायेगा, तो करेंगे ऑपरेशन।
तुझे सुगर कैसे हो गया बबलू?
टेंशन के कारण मौसी।
टेंशन क्यों रहता है तुझे?
मम्मी के कारण। घर में बर्तन चौका करनेवाली बाई तक नहीं है। हमारी हैसियत ही नहीं है। सुबह से शाम खटती रहती है मेरी वाईफ। तब भी मेरी वाईफ के पीछे पड़ी रहे, पूरा घर घिना के रखी है। एकदम गरम–गरम खाना बिस्तर में ले जाकर देती है, तो भी चिल्लाती है–ऐसा बेस्वाद खाना मैं नहीं खा सकती। फेंक देती है। घर की मालकिन हूँ, कुतिया नहीं। बड़ी भाभी ऑनलाईन कपड़े का धंधा करती है। मेरी पत्नी देखने चली जाती है कि कैसे कपड़े आये हैं? बस बकना शुरू। गंदी गालियाँ तेरे जैसी कंगालिन को मेरी सेवा करने लाया गया है। तू उसी छिनाल के साथ मुझे मारने के चक्कर में है। मेरी वाईफ नीचे जाये तो गालियों, जबकि खुद जाती रहती है, किढ़ल–किढ़लकर। उस दिन ऐसे ही नीचे गई। किसी को नहीं देखा तो एक साड़ी चुराकर ले आई। भाभी भीतर रही होगी। आकर कपड़े गिनी होगी। ऊपर पहुँच गई। इनका बक्सा खोलकर देख ली। हुई जमकर लडाई। इनकी आदत इतनी छिछोरी, इतनी झूठी कि भाई–बहनों को आपस में लड़ा दे।
इसीलिए विजया–जया ने इनको मोबाईल नहीं दी कि हमारी शांति भंग कर देगी। आस्था चैनल देखे, चाहे साधना चैनल। चिकने घड़े पर कोई असर नहीं। सबसे कहती है, मुझे अनिरुद्ध महाराज के आश्रम में ले चलो। अगर चली गई तो पूरे आश्रम में जहर घोल देगी।
तेरा बहुत खयाल रखती है बबलू।
इनकी बातों पर मत जाइये मौसी। यह दूसरों से ऐसी ही बढ़िया बढ़िया बातें करती है।
खैर प्रकाश तो तेरा खयाल रखता है न भाई।
कोई किसी का खयाल नहीं रखता मौसी। प्रकाश भैया, सुभाष भैया, दोनों ने मेरा जमकर इस्तेमाल किया, फिर दूध में गिरी मक्खी की तरह निकाल फेंका। दो पैसा हाथ खर्च के लिए तक नहीं। कह दिया इसे कुछ नहीं आता। ऊपर से इल्जाम इसपर भरोसा करने से धंधा बैठा।
विजया–जया तुझसे हमदर्दी रखती है बबलू?
हमदर्दी का नाटक। खुशामद करती है बड़ी भाभी का। उनके लिए बढ़िया तोहफे लाती है। मेरी पत्नी को सिर्फ उपदेश। उपदेश ही नहीं, बात सुनाना–''लाया तो गया है तुमको मम्मी की सेवा करने और तुम मम्मी से ही दुर्व्यवहार करती हो। मेरा तो जी फट गया है इन बहनों से... मौसी, स्वार्थ में दोनों मिली हुई हैं। वर्ना दोनों में भेद है।
मैं सोचती। अच्छी मौसी बनी मैं।
मम्मीजी तो इतने दिनों से अपनी रंग–बिरंगी जीवन–गाथा सुनाती ही रही है। विजया, जया तो पचीस बरस पहले से जो सुनाना शुरू की, तो जब मौका मिला आकर सुना जाती रहीं। इनके पिताश्री भी जबतक चलते–फिरते थे, मौका मिलता तो आकर अपनी भड़ास निकाल जाया करते थे। इनलोगों ने सालगिरह पार्टी में इतना खर्च कर दिया। लोगों ने दिया क्या! लिफाफे। लिफाफे में क्या। किसी में ग्यारह रुपये, किसी में इक्कीस। इसके भट्ठे वाले मजदूर, कुली, अपना पूरा खानदान लेकर आ गये। एक–एक आदमी खा रहा है बीस–बीस रसगुल्ले। दिया क्या, लिफाफे में पाँच रुपये। पेंशन से घर का इतना बड़ा जहाज चल रहा है, लेकिन घर में मेरी कोई पूछ नहीं। जया आई अपने ससुरालवालों के साथ। उनकी मंदिर में कोई मानता थी। इतने पैसे दिये मैंने घर में। मगर इन लोगों ने ढंग से मान–दान नहीं किया उनका। पैसे बचा लिये। मैं भी रेल्वे का आदमी। वातानूकुलित बोगी में बैठकर चल देता हूँ आराम से दूर दराज के गाँवों–शहरों में, किसी न किसी सगे संबंधियों से मिलने। रह जाता हूँ कुछ दिन उनके घर। ये ससुरे फोन करके पूछते रहते हैं–पापा आपके घर आये हैं क्या? पिछले दिनों एक वृद्धाश्रम में चला गया था कि अपनी पेंशन यहीं दूँगा। ये साले आये। नाक रगड़े... 'घर चलो पापा। आपके बिना घर सूना है।' पिताश्री शुरू होते तो पीछा न छोड़ते। आज बबलू भी अपनी व्यथागाथा सुना दिये।
सोचने लगी, सुभाष ने कभी नहीं सुनाया कि अगले दिन सच में सुभाष का फोन, मौसी मैं सुभाष बोल रहा हूँ।
हाँ, बोलो सुभाष।
बोलना यह है मौसीजी, मम्मीजी आजकल आपके घर में हैं। वह तो अपना राग आपको सुनाती ही होंगी। विजया, जया को सुनती ही रही है आप। आपको नहीं लगता कि सुभाष का भी कोई राग होगा।
मुझे यह सब बताने से क्या फायदा सुभाष।
दरअसल शुरू से ही देखा, उस घर में आपका नाम बड़े–छोटे सभी बहुत सम्मान से लेते रहे हैं। परिवार में कोई बड़ा फैसला हो तो आपकी बात बहुत माने रख सकती है। मेरी पत्नी ने भी कहा मौसी को अपना पक्ष बता कर तो रखो। ऐन मोके में कोई तुम्हारी बात भी तो रखे।
सुभाष, तुम बढ़िया कमा खा रहे हो। शहर में, समाज में नाम हो चुका है। बहुत दिनों से अलग–थलग ही हो। इधर की झंझटों में ध्यान न दो तो अच्छा है।
बिल्कुल ध्यान न दूँ, अगर यह लोग कह दें कि मैं उनका बेटा नहीं हूँ। बेटा के रूप में मुझे इस घर से मिला क्या। न माँ–बाप का प्यार, न भाई–बहन का दुलार। अबोध शिशु को दूसरे के घर में छोड़ दिया, कमी झाँकने तक नहीं गये कि बच्चा कैसा है। उन बेचारों ने पालन–पोषण तो किया, मगर उनके बच्चों और मुझमें फर्क तो साफ दिखता था। अभागा बालक समझ ही न पाये कि उसके साथ ऐसा अनाचार क्यों? नवीं कक्षा में था, तब शायद उन्हें लगा होगा कि जमीन, जायदाद पर मुझे हक न देना पड़े, सो बताना पड़ा मुझे। जिस दिन मुझे बताया गया, मैं विश्वास ही न करूँ। क्या भयानक मजाक है। बूढ़े मामाजी ने गीता हाथ में लेकर कहा कि मेरे जाने के दिन आ गये हैं। मेरे बाद तुम बहुत परेशानी में पड़ सकते हो। इसलिये बेटे तुम चले ही जाओ। वही तुम्हारी सही जगह है। मेरा तो दिमाग पागल हो गया। तोड़–फोड़ उठापटक करने लगा। नींद का इंजेक्शन देकर सुलाना पड़ा मुझे। बहुत समय लगा मुझे शांत होने में। वे लोग ही मुझे यहाँ पहुँचा गये। मम्मी ने मुझे गले तो लगाया, पर वह उष्माा नहीं थी। बहनें प्रकाश भैया, प्रकाश भैया करती रहें, मुझे देखकर ठिठक जायें। जया बहुत सुंदर थी। मुझे बहुत प्यारी लगे। एक दिन किसी बात पर मैने उसकी चोटी खींच दी। मैं पीछे था। वह मुझपर गिर गई। बस दोनों बहनों ने हल्ला कर दिया.. इस सुभाष भैया की आदत ठीक नहीं है। प्रकाश भैया मुझे कड़ी निगाह से देखें। बाप तो मुँह ही न देखना चाहें। मम्मी जरामरा बीच बचाव कर दें। वहीं तो अवांछित, यहाँ तो तिरस्कृत भी। पूछ हुई जब मेरी बड़े घर में शादी हुई। लाखों का तिलक मिला। घर में हर किसी को कीमती
तोहफे मिले। मेरी पत्नी जब भी मायके से आयी, सोने–चाँदी का कोई न कोई छोटा–मोटा जेवर महिलाओं को भेंट में दे। मगर कुछ दिन में वह भी समझ गई। समझ गई, ये लोग हमें इस घर से अलग समझते हैं। सो मौसी, हम अलग हैं। खुशहाल हैं, पर कसक तो है कि हमारे कोई नहीं। अगर हमें उस घर से हमारा हक मिलता है, तो हमें लगेगा कि हम उस परिवार के हैं। परिवार के लोग हमें अपना मानते हैं। कभी भूले भटके विजया, जया घंटे दो घंटे के लिये आ जाती है। प्रकाश भैया भाभी भी। मान–दान निभा देते है हम। शिष्टाचार, व्यवहार अलग चीज है, जायदाद में हक देना यह साबित करता है कि तुम इस परिवार के सदस्य हो। यह पुख्ता सबूत है। मुझे सबूत चाहिये। तभी मेरी जलती आत्मा शांत होगी। मौसी! सुन रही है ना।
हाँ सुन रही हूँ। मामला पेचीदा है सुभाष।
मैंने आपको इसीलिए फोन किया कि आप बुद्धिमती हैं। विवकेशील है। मौका पड़ने पर आप मुझ बदनसीब का पक्ष रख सकें। अगर मुझे नकारा गया तो इतनी दूर तक जाऊँगा कि ये लोग सोच भी नहीं सकते।
सुभाष की बातों ने मुझे बहुत चिंता में डाल दिया कि एक शाम प्रकाश भी आकर मेरे

सामने खड़ा।पैर छूकर बोला–पहचाना।
मैं घर के सामने बरामदे में बैठी सामने सड़क का नजारा देख रही थी। उसका मुँह देखने लगी।बोला–मौसी में प्रकाश।
प्रकाश! क्या रूप: क्या शानदार जवान व्यक्तित्व। और यहाँ सामने खड़ा प्रौढ़। चेहरा पका हुआ।शरीर भारी। धसकता सा। बोली–हाँ, नहीं पहचान पाई। बहुत दिन हो गए देखे।मम्मी तुम्हारी भीतर है।विजया से बात कर रही है।
प्रकाश भीतर जाकर सोफे पर बैठ गया।वे बिस्तर पर बैठी मेरी मोबाईल धरे विजया से बातें कर रही थी। उनकी पीठ प्रकाश की तरफ। उन्हें प्रकाश दिखा ही नहीं। मगन–चगन बतियाती रहीं।घंटा भर हो गया।मोबाईल देने के लिए सामने मुँहकर मुझे आवाज लगाई कि दिखा प्रकाश। हँसकर बोली–जरा विजया, जया से बात कर रही थी।
बोला–हाँ, सुन रहा था मैं घंटे भर से तुम्हारा प्रकाश पुराण।
उन्हें कोई असर नहीं, प्रेम रस बरसाती कह रही है–मुझे आये तीन दिन हो गये।मैं सोच रही थी–प्रकाश माँ से मिलने नहीं आया।पूछो शुभ्रा से, कितना याद कर रही थी तुझे...
मैं उधर से गुजर रही थी अपना नाम सुनकर कमरे में आ गई।प्रकाश कहने लगा–जरा बैठिये न मौसी।इन्हें समझाइये ये माँ बेटी समझती है कि में चालबाजी से पापा के पेंशन का पैसा ले रहा हूँ।गड़बड़ी इन्होंने खुद की है।पापा के नौकरी के कागजात में इनकी उमर होती है तिरासी साल। आधार कार्ड में इन्होंने उमर लिखाई तिहत्तर साल। सो जाँच पड़ताल चल रही है।तब तक अंतरिम रूप से पेंशन की कुछ राशि परिवार चलाने के लिए दी जा रही है।पापा के रुपये पैसे के कागजात शुरू से मैं ही देखता रहा हूँ।पापा ने शुरू से मुझे अधिकार दे रखे थे।मगर ये माँ बेटियाँ...
मैं बोली–प्रकाश! मैं किसी को नहीं समझा सकती।इतनी ही सलाह दे सकती हूँ कि तुम सब भाई–बहन पढ़े–लिखे समझदार हो। सबको बुला लो और मिल–बैठकर कुछ फैसला कर लो।तुम बड़े हो।छोटी उमर से ही परिवार का दायित्व सँभालते रहे हो, सो अब भी निभा दो।सबको बुलाकर हानि–लाभ से ऊपर उठकर
ऐसा फैसला लो, जिसमें भाई–बहनों में आपसी प्रेम भाव बना रहे।
मेरे बुलाने से कोई नहीं आयेगा मौसी।अब तो सब मुझे खलनायक समझते हैं।सुनी ही होंगी, माँ बेटी मेरे बारे में क्या–क्या बतियाती रहती हैं।आप अपने घर में सबको बुला लीजिये।आपको सब मानते हैं।
तुम्हारे पारिवारिक मामले में मैं नहीं पड़ सकती प्रकाश, न ही मुझे पड़ना चाहिये। तुम्हारी बिरादरी की जो सभा है, उसके अध्यक्ष से कहो कि वे समाज की सभा बुलायें। समाज की पंचायत जो फैसला दे, उसे तुम सब भाई–बहन मानो।इनके जीते जी यह फैसला हो जाये तो ठीक, नहीं तो भाई–बहन मुकदमे मामले में फँस जाओगे।सिर फुटौव्वल की नौबत भी आ सकती है।
असली जड़ ये है मौसी।ये सिर्फ बाते करती है।सबको लालच देती रहती है।फैसला चाहती ही नहीं।ये समझती हैं कि फैसला हो जायेगा तो इनके हाथों से सत्ता चली जायेगी।
मैंने उनकी तरफ देखा।वे मक्कड़ साधे चुप बैठी रहीं।
अब तुम लोग जानो कहकर मैं कमरे से निकल आई।
कुछ देर बाद उसकी मीठी आवाज आई–शुभ्रा! जरा ये सेब छीलकर, पीस दे।खा लूँ।बेचारा प्रकाश कितने प्रेम से लाया है।ले न बहन तू भी खा।कोप के मारे मेरा बुरा हाल।वे गुहार लगाती रहीं, क्यों नहीं खाती बहन।सिर्फ मेरे लिए थोडे ही लाया है।
भागी मैं वहाँ से।नहीं भागती तो गला दबा देती।
मेरे दिन–रात त्राहिमाम की स्थिति में कट रहे थे।आखिरकार मुक्ति की घड़ी आई। रायपुर से लौटकर बबलू आया।यह सामान बाँधे बैठी थी।आवाज सुनकर मैं सामने आई विदा करने।मुझे देखते ही लिपट गई 'यह है मेरी प्यारी बहन।मैं अकेली नहीं हूँ दुनिया में।ज्यादा करोगे तो यहीं रह जाऊंगी।'
मैंने स्वयं को छुड़ाते हुये कहा अभी तो आप जाओ।
आटो में बैठती हुई बोली..मैं फिर आऊँगी बहन।तुझे मैं नहीं छोड़ सकती।भगवान ने मुझे तुझसे मिलाया है।
वह गई।मैं भीतर आई।पूरा घर मुझे शांत लगा।शांत, सुंदर, अपना।लगा, घर में पसरी कोई बुरी छाया निकल गई है।अब सारे घर की हवा निष्पाप, निर्मल, स्नेहिल। घर की दीवारें, खिड़कियों फर्नीचर, आँगन बाड़ी के पेड़–पौधे प्रेम बरसाते हुये से।मैं आनंद में नहाती पूरे घर में फिरने लगी।
मुक्तिपर्व मना रही हूँ।
मगर फिर फोन आ रहे है।विजया, जया के ही नहीं।प्रकाश, बबलू, सुभाष के भी। जाने क्यों सभी मुझे ही अपना दुखड़ा सुनाने पर आमदा है।कल तक प्रकाश भैया.. प्रकाश भैया करने वाली विजया–जया प्रकाश को बेहिचक शातिर खलनायक साबित कर रही है।शुरू से परिवार पर कब्जा किये था।मौसी! यह तो मम्मी के सारे गहने खा गया।उतना बड़ा मकान हथिया ही लिया है।अब जमीन पर आँखें गढ़ाये है। असली दोष मम्मी का है।शुरू से इस पर लट्टू रहती थी।प्रकाश का भग्न हृदय ... जब से होश संभाला मौसी, तब से इस घर को संभाला है मैने, वर्ना मम्मी ने तो इस घर को बर्बाद ही कर दिया था।अब क्या बताऊँ।निंफोमेनिया
अनियंत्रित यौन इच्छा थी इन्हें।मुझे भी अपने लपेटे में लेना चाहती थीं।नफरत है मुझे उनसे।बबलू का सीत्कार.... इस घर में सब मेरे दुश्मन है मौसी।सबसे बड़ी दुश्मन मम्मी।चाहती है कि मैं अपनी पत्नी को मारूँ पीटूँ कि माँ की सेवा क्यों नहीं करती।सुभाष का चिर आक्रोश भाई बहन ने तो देखते ही मेरा तिरस्कार कर दिया था, मगर ये माँ कैसी! एक बार अपने जाये बच्चे को देखने नहीं गई।अभी भी सबसे बेहिचक कहती है–सुभाष का हिस्सा नहीं बनता।मुझे पक्का पता चला है मौसी, प्रकाश इससे अदालत में बुलवाने वाला है कि सुभाष मेरे पति की औलाद नहीं है–क्रोध के मारे उसकी आवाज बिजली–सी कड़कने लगी, तब बताये बुढ़िया मेरा बाप कौन है...
मैं सन्नाटे में।फोन रख दिया।पर अंगारे उगलती उसकी कड़कती आवाज गूंजती रही।सन्नाटा मेरे जेहन में पसर गया।सहमा हुआ सन्नाटा प्रतीक्षारत है... किसी दुर्दान्त अनहोनी का... किसी पूर्ण विध्वंश का या... या शायद संभावित नवनिर्माण का..।

अक्षय राज शर्मा'
7015490935

आज तकनीकी – युग में,
हुआ भले बाह री विकास।
दिल का दर्द मिटता नहीं,
मानव घूमें उदास।।१

पर्वत चुप्पी लगे साधने,
नदियाँ भागीं दूर।
पशु–पक्षी संग छोड़ गए,
यूँ मानव हुआ मजबूर।।४

खाओ, पियो, मजे करो,
ले – लेकर धन उधार।
भले देश जाए भाड़ में,
अब निरर्थक परोपकार।।७

मूर्ख लोग पड़े उलझन में,
सोचें, मिले कोई नई कंपनी।
हुए जाते हम लाचार – विवश,
कोई आ बदले किस्मत अपनी।।१०

गलियाँ सब पक्की हुई,
नहीं रहा शहर में गंद।
मन का मैल निकला नहीं,
सूखा दिल का मकरंद।।२

पर्यावरण कभी ढाल था,
हुआ जाता अब निढाल।
बादल छिटक धुआँ हुए,
जले रोम–रोम संग खाल।।५

भाषा न किसी की एक अब,
कर चटर – पटर भरमाएँ।
बोलियाँ सब दम तोड़ रहीं,
कानून समझ नहीं आए।।८

अपनी बोली का महत्व समझो,
भाषायी–दुविधा यही मिटाएगी।
आप–काज शुभ काज यही अब,
विदेशी षड्यंत्र सब निपटाएगी।।११

मन ही मन घुटता हुआ,
मानव ज्यों निरा उदास।
डूबा हुआ अवसाद में,
भूला हास – विलास।।३

धन के पीछे हाथ धो,
पड़ गए सत्ता के दलाल।
स्वार्थ–स्विच सब अश्वन कर,
आतुर हुए मालामाल।।६

मानव – बुि भ्रमित इतनी,
असमंजस में सिरजनहार।
छिपा कहीं नभ में बैठा,
खोजने को कोई उपचार।।९

मत भागो डश्वलर के पीछे,
यह तो कन – कटैया नैया है।
सोन – चिरैया है धरती अपनी,
इसकी चहचहाहट दैया–मैया है।।१२

समीक्षा

'इमिग्रेंट' कैनेडियन जीवन पर आधारित उपन्यास,

दयानन्द जायसवाल
9931240303

'इमिग्रेंट' कैनेडियन जीवन पर आधारित उपन्यास, धर्मपाल महेंद्र जैन, झाबुआद्धमध्य प्रदेशऋ प्रवासी–टोरंटो, (कनाडा) का वैश्विक संदर्भ में साहित्य की परिधि और सीमाओं को न केवल विस्तार दिया है बल्कि साहित्य के प्रति अपनाई जानेवाली एकांगी और एकपक्षीय अध्ययन–दृष्टि के क्षेत्र में इन्होंने समग्रता प्रस्तुत की है तथा संस्कृति के नये आभामंडल में नए मिथकों को गढ़ा है जहाँ मनुष्य अपने लिए उन विमर्शो की मांग करेगा जो मानवीय गरिमा में विश्वास, सामाजिक प्रतिब)ता और मानवीय मूल्यों एवं नृशन्सता के खिलाफ उठने वाली आवाजों को विलास और ऐश्वर्य के कोलाहलों से दूर रखने का प्रयास किया है।

उपन्यासों की नई पीढ़ी अपने पश्चिमी देशों से दो कदम आगे हैं। अपने समय के सवालों से टकराने में उन्हें जरा भी गुरेज नहीं है। कई अछूते क्षेत्र और विषय हैं, जिन पर उनकी निगाहें केंद्रित हैं और वे उस ओर आत्मविश्वास के साथ बढ़ रहे हैं। आज के इस दौर में नई पीढ़ी और उस पर मश्वड संस्कृति का पड़ता प्रभाव, उसके भटकाव, गाँवों पर हावी होता शहर, नारी – जागरण की चेतना का उभरता प्रकाश–पुंज, लोकहित के खाल ओढ़कर सत्ता हथियाने के लिए प्रयासरत भेड़िए – ऐसे बहुत सारे विषय और क्षेत्र हैं जिन पर नए उपन्यास लिखे जा रहे हैं। ऐसे ही सवालों से जूझते हुए धर्मपाल महेंद्र जैन का यह उपन्यास ष्इमिग्रेंटष्है जिसमें भारत और कनाडा के जीवन को, उसके युवा स्वपनों को तथा उसके पीछे चल रही काली कथाओं को खोलने का प्रयास किये हैं। औपनिवेशिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन की चिंता के साथ इस उपन्यास का जन्म हुआ है। इसमें छात्र जीवन से गुजर रही युवा पीढ़ी के बारे में – उनकी भावनाओं, उनके स्वपनों, आकांक्षाओं, प्रेम संबंधों आदि की कहानी अपने अंदाजेबयां को हूबहू बनाए रखते हुए कही गई है।

वैसे तो सवाल कई हैं, चुनौतियाँ अनगिनत हैं, समस्याएं सुरसा के मुँह की तरह लगातार बढ़ती ही जा रही है। कुछ बनी बनाई समस्याएं हैं जिन्हें लाख कोशिशों के बावजूद समाज आजतक ढोने के लिए मजबूर है, कुछ विकास के नाम पर नित – निर्मित समस्याएं हैं जिनसे मानवता को दो–चार होना पड़ता है। लेखक, विचारक, साहित्यकार अपने समय का सहचर होता है वह भले ही कोई बड़ा परिवर्तन न ला सके पर परिवर्तन की बुनियाद जरूर तैयार कर देता है। इसी कड़ी को जोड़ते हुए उपन्यासकार धर्मपाल जैन ने भारत और कनाडा के बीच को, इसके युवा सपनों को और पीछे चल रही काली कथाओं को खोलने का प्रयास किया है। यह ष्इमिग्रेंटष्द्धप्रवासीऋ उपन्यास अपने में पहचान के संकट, अपनापन की तलाश, और नई संस्कृति में समायोजन के संघर्षो को रेखांकित करता है। इसमें उपन्यासकार प्रवासी–पहचान, मानवीय पीड़ा, सांस्कृतिक संघर्ष, पीढ़ीगत अंतर,भाषाई भेद–भाव, नस्लवाद, दलालों तथा सरकारों की चालबाजियां और बेहतर जीवन की चाहत जैसी विभिन्न चुनौतियों को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करते हैं, जो वास्तविक अनुभवों से प्रेरित हैं।

साहित्यिक विधाओं के अंतर्गत उपन्यास की उत्पत्ति भी आधुनिक काल के यथार्थवादी परिवेश की ही एक अनुगूँज है। उपन्यास मूलत: पूँजीवादी सभ्यता की देन है। इस सभ्यता के विभिन्न जीवन सत्यों को कथा के माध्यम से व्यक्त करने के लिए ही इसकी उत्पत्ति हुई। उपन्यास का फलक बड़ा होने के कारण इसमें सारी विधाओं को सन्निहित करने की शक्ति निहित होती है। लेखक के इस उपन्यास में जीवन और जगत से उठने वाली समस्या, विडम्बना साहित्य की परिधि से बाहर नहीं है। साहित्यिक विधाओं में यह उपन्यास – कथानक समस्याओं को बड़े फलक पर चित्रित करने में सक्षम है क्योंकि इसमें केवल व्यक्ति के अपने परिवार अथवा अपने समाज से प्रवासित जीवन जीने की अनुभूतियों का ही चित्रण नहीं है, बल्कि भौगोलिक परिस्थितियों की भिन्नता के कारण जो समस्याएँ जन्म ले रहीं हैं , उनका विस्तार से वर्णन भी है। कई बार व्यक्ति को अपने मूल स्थान से विस्थापित होकर विभिन्न कारणों से नये–नये स्थानों पर रहने के लिए मजबूर होना पड़ता है, जहाँ वह अपरिचित लोगों के साथ अपना संबंध स्थापित करता है। अनजानी वस्तुओं के साथ , अनजान लोगों के साथ जीता है, अपनी नयी पहचान बनाता है, नयी भाषाएँ सीखता है और स्वयं को एक अलग संस्कृति में ढालने की कोशिश करता है जिसमें बार–बार छला जाता है। रचनाकार उपन्यास में मानव– मन की ऐसी सारी भावनाओं व समस्याओं को सहज रूप से स्पर्श करते हुए अपने पात्रों के द्वारा हर समय उनका मनोविश्लेषण करते दिखते हैं। ये अपने तीक्ष्ण व्यंग्य –नश्तरों से समाज एवं व्यवस्था में व्याप्त बुराइयों को उजागर करने में भी सिद्धहस्त रहे हैं। इनके पात्र प्राय: समाज के बीच से लिए गए आमजन होते हैं। कथानक में भारतीय बच्चों को विदेशों में रहने, विद्याध्ययन करने आदि में किन–किन और कैसी–कैसी समस्याओं से जुझना पड़ता है इन सारे विषयों को केंद्र में रखकर व्यापक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक चुनौतियों को अंकित करते हुए एवं प्रस्तुति को आकर्षक बनाते हुए, व्यावहारिक ज्ञान से समृ) नायक के द्वारा एक तरफा प्रेम–कहानी को उपन्यासकार साथ–साथ लेकर चलते हुए कनाडा की शासन व्यवस्था, पुलिस की कार्यशैली के बीच नायक अपनी चाहत हेतु सफलता के लिए अथक प्रयास करते हैं तथा पात्रों की मानसिक दुर्दशा एवं कठिन यातनाओं के चित्रण की सुंदर प्रस्तुति भी किस उपन्यास में दिखती है। इस प्रकार घटनाक्रम की गतिशीलता को बनाए रखने हेतु प्रवासियों की विभिन्न परिस्थितियों से अवगत कराया है तथा उपन्यास सामाजिक यथार्थ, जीवन के अनुभव और इतिहास की गति रचनाकार की सृजनशीलता का अनूठा उदाहरण है।

उपन्यास में मुख्य पात्रों के आंतरिक संघर्ष, भावनाओं और सोच का सूक्ष्म चित्रण किया गया है, जिससे पाठक जुड़ पाते हैं। इसमें सुधारवादी संदेश, नैतिक मूल्य और स्वस्थ चरित्रों को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति रही है। भाषा पाठकों के करीब, सरल, और भावपूर्ण है । इसमें वर्णनात्मक और संवादात्मक शैली का उपयोग की प्रमुखता है। अत: उपन्यास पठनीय रहने कारण उपन्यासकार को बधाई एवं मेरी हार्दिक शुभकामनाएं ।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303